राजस्थानी साहित्य का संक्षिप्त इतिहास

डॉ. गोरधनसिंह शेखावत



दी स्टूडेण्ट्स बुक कम्पनी

राजस्थानी साहित्य का संक्षिप्त इतिहास
प्रथम संस्करण : 1989
मूल्य : 50.00
प्रकाशक : दी स्टूडेन्ट्स बुक कम्पनी
घोड़ा रास्ता, जयपुर-302 003 फोन : 72455
74087
मुद्रक : कीर्तिमान प्रिन्टर्स, जयपुर

भूमिका

राजस्थानी साहित्य के इतिहास को लेकर डॉ. मेनारिया, सीताराम लालस एवं डॉ. हीरालाल माहेश्वरी के शोधपूर्ण एवं कठिन परिश्रम से लिखे हुए ग्रंथ उपलब्ध होते हैं। डॉ. हीरालाल माहेश्वरी का अंग्रेजी में लिखा 'हिस्ट्री ऑव राजस्थानी लिटरेचर' राजस्थानी साहित्य की अद्यतन प्रवृत्तियों को प्रस्तुत करने वाला पूर्ण इतिहास ग्रंथ है लेकिन फिर भी आज इतिहास लेखन की आवश्यकता बनी हुई है, इसका कारण है—साहित्य चेतना का युगबोध से जुड़ कर निरन्तर बदलते रहना और फिर उनके अनुकूल प्रतिमानों को स्थिर करके, उसका मूल्यांकन करना। राजस्थानी के प्रारम्भ काल और मध्यकाल का साहित्य आज हमारे सामने है तथा विद्वानों ने इसका मूल्यांकन भी किया है लेकिन आधुनिक साहित्य निरन्तर लिखा जा रहा है अतः उसकी साहित्यिक प्रवृत्तियों को पहचान कर उसकी रचनात्मक शक्ति का मूल्यांकन अति आवश्यक है।

मैंने इस इतिहास में इसकी सीमा को ध्यान में रखकर ही आधुनिक काल की साहित्य-चेतना, तत्कालीन परिवेश और बदलती रचना-दृष्टि को मूल्यांकित करने की कोशिश की है तथा उपलब्धिपरक रचनाओं की विशिष्टता का संकेत भी दिया है। आधुनिक काल की रचनाओं का मूल्यांकन करते समय साहित्यिक प्रवृत्तियों को तलाशने, उनके अनुकूल कवियों का विभाजन करने एवं उनका प्रवृत्यात्मक आकलन करना, मेरी दृष्टि रही है। मैं नहीं कह सकता कि मैंने अद्यतन प्रकाशित सभी रचनाओं को इसमें समेट लिया है, फिर भी कुछ का सन्दर्भ दिया गया है तो सम्भव है कुछ सन्दर्भ छूट भी गये हों। इसका कारण मेरी और पुस्तक के कलेवर की सीमा ही कही जा सकती है।

मैंने उपलब्ध इतिहास ग्रंथों, समीक्षा पुस्तकों एवं पत्र-पत्रिकाओं से इस प्रकार सामग्री जुटाई है कि जिससे राजस्थानी साहित्य के इतिहास की एक संक्षिप्त रूपरेखा बन सके, ऐसी स्थिति में, मैं सभी विद्वानों, रचनाकारों एवं पत्रों के सम्पादकों के प्रति आभार प्रकट करता हूँ। आदरणीय डॉ. हीरालालजी माहेश्वरी का इतिहास मेरे सामने आदर्श के रूप में रहा है, मैं उनके प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ।

इस पुस्तक के प्रकाशन हेतु अगर मुझे चिन्मय प्रकाशन के मालिक आदरणीय ताराचन्दजी वर्मा की ओर से प्रेरणा और प्रोत्साहन न मिलता, तो यह पुस्तक तैयार होना असम्भव थी, उन्हें किन शब्दों में धन्यवाद दूँ!

गोरधनसिंह शेखावत

अनुक्रम

अध्याय 1

राजस्थानी भाषा : स्वरूप-विवेचन

राजस्थानी आज राजस्थान की मातृ-भाषा है। राजस्थानी भाषा का साहित्य सम्पूर्ण भारतीय साहित्य में अपनी एक अलग पहचान रखता है। राजस्थानी का प्राचीन साहित्य अपनी विशालता और अगाधता में इस भाषा की गरिमा, प्रौढ़ता और जीवन्तता का सूचक है। आज भी हस्तलिखित ग्रंथों एवं लोक साहित्य का जितना बड़ा भण्डार राजस्थानी भाषा में है, उतना शायद ही किसी भाषा के पास हो। जिस तरह राजस्थान की परम्पराएं अद्भुत रही हैं, ठीक उसी प्रकार यहां का साहित्य भी अद्भुत। राजस्थान अपने वैभवपूर्ण अतीत, गौरवमयी परम्पराओं और सांस्कृतिक जीवनादर्शों के लिए पूरे विश्व में सुविख्यात रहा है। अनुपम त्याग, महान बलिदान और उच्च कोटि के शौर्य, वीरत्व तथा पराक्रम के लिए प्रेरणा-स्त्रोत रही है, यहाँ की वीर-प्रसविनी मरूधरा-राजस्थान की भूमि। जीवन के हर क्षेत्र में, जीवन-मूल्यों और मान-मर्यादाओं की सीमा स्थापित की है, यहां के रण-बांकुरों ने। उज्ज्वल कीर्ति और दैदीप्यमान गाथाओं से परिपूर्ण रहा है, राजस्थान का इतिहास।

इस तरह की धरती से जुड़ा राजस्थानी साहित्य लौकिक और सांस्कृतिक परम्पराओं का धनी रहा है, यही कारण है कि देश और विदेश के विद्वानों ने राजस्थानी साहित्य की मुक्त कंठ से प्रशंसा की है। रस, भाव और स्फूर्ति से परिपूर्ण राजस्थानी साहित्य की तरफ सर जार्ज ग्रियर्सन, डॉ. टैसीटरी, डॉ. सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या आदि भाषाविदों के अतिरिक्त विश्व-कवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर एवं महामना पं.मदनमोहन मालवीय का ध्यान भी आकृष्ट हुआ है। वीर रस की जैसी उच्च कोटि की कविता राजस्थानी साहित्य में है वैसी अन्य भाषा के साहित्य में दुर्लभ है। यह कविता उन कवियों के द्वारा लिखी गई, जिन्हें युद्ध का प्रत्यक्ष अनुभव था क्योंकि वे कलम के साथ-साथ करवाल-ग्राही भी थे। वीर रस की रचनाओं पर मंत्र-मुग्ध होते हुए रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने कहा था - 'भक्ति रस का काव्य तो भारतवर्ष के प्रत्येक साहित्य में किसी न किसी कोटि का पाया जाता है परन्तु राजस्थान ने जो साहित्य निर्माण किया है उसकी जोड़ का साहित्य और कहीं नहीं पाया और उसका कारण है। राजस्थानी कवियों ने कठिन सत्य के बीच में [illegible] नगारों के बीच अपनी कविताएं बनाई थी।' इस कथन से प्रकट है

भूतिमय चित्रण के कारण राजस्थानी का वीर रसात्मक साहित्य मार्मिक और भुजाओं को फडका देने वाला है। अपने परिवेश की स्वाभाविक अनुभूतियों का उल्लेख ही तत्कालीन रचनाकार की रचनात्मकता का महत्वपूर्ण विन्दु था।

इसी भांति महामना पं. मदनमोहन मालवीय ने भी राजस्थानी साहित्य की प्रशसा करते हुए कहा था–'राजस्थानी वीरो की भाषा है। राजस्थानी का साहित्य वीर साहित्य है। संसार के साहित्यों में उसका निराला स्थान है। वर्तमान काल के युवको के लिए उसका अध्ययन अनिवार्य होना चाहिए। इस प्राण-भरे साहित्य और उसकी भाषा के उद्धार का कार्य अत्यन्त आवश्यक है.........मैं उस दिन की प्रतीक्षा मे हूँ जब हिन्दू विश्वविद्यालय में मर्यादापूर्ण विभाग स्थापित हो जायेगा, जिसमें राजस्थानी भाषा और साहित्य की खोज तथा अध्ययन-अध्यापन का पूर्ण प्रबन्ध होगा।'

इससे प्रकट होता है कि राजस्थानी साहित्य के जीवंत और निराले रूप ने देश के विद्वानो को प्रभावित किया है। साहित्य की जीवंतता और उसका प्रेरक स्वरूप ही किसी साहित्य को कालजयी रूप प्रदान कर सकता है। राजस्थानी साहित्य के मूल में ऐसी भावनाएं रही है, यही कारण है कि राजस्थानी के विद्वान प्रो. नरोत्तमदास स्वामी ने लिखा है–'राजस्थानी साहित्य जीवन का साहित्य है वह जीवन से असंग पागलो का प्रलाप नहीं किन्तु जीवन के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध रखने वाला है। वह जीवन को प्रेरणा देने वाला और उसमें नयी चेतना फूंकनेवाला है।... ....राजस्थानी साहित्य जनता का साहित्य है। जनता के जीवन के नानारंगी चित्र उसमें प्रचुर सख्या मे मिलेंगे।'[1] राजस्थानी साहित्य मे जिन भावनाओं एवं मूल्यों का चित्रण हुआ है, उनकी व्यापकता जीवन और राष्ट्र के समग्र रूप से जुड़ी हुई है। जननी और जन्मभूमि के लिए त्याग और बलिदान, देशभक्ति और धरती-प्रेम, नारी का प्रेरक व्यक्तित्व, मरण-त्योहार की अद्‌भुतता, शत्रु से प्रतिशोध की भावना, स्वातन्त्र्य भावना, राष्ट्रीयता और अखंडता, शृंगार और वीर रस का चित्रण, आदि कुछ ऐसी विशेषताएं हैं जिनके कारण राजस्थानी साहित्य महत्त्वपूर्ण माना जाता है।

राजस्थान का नामकरण—राजस्थानी भाषा राजस्थान प्रान्त की है लेकिन राजस्थान के बाहर भी कलकत्ता, बम्बई, मद्रास आदि प्रमुख नगरों में राजस्थानी भाषी लोगों की काफी सख्या है अतः राजस्थान के नामकरण पर थोड़ा विचार कर लेना चाहिए क्योकि राजस्थानी नाम राजस्थान पर ही आधारित है। राजस्थान मे साहित्य-सृजन की एक लम्बी परम्परा रही है और इसके विशाल साहित्य की भाषा के भी कई नाम प्रचलित रहे हैं।

---

1 राजस्थानी साहित्य : एक परिचय, पृ. 19-20

'राजस्थान' शब्द का प्राचीनतम प्रयोग 'राजस्थानीयादित्य' वि०सं० 682 में उत्कीर्ण वसंतगढ़ (सिरोही) के शिलालेख में उपलब्ध हुआ है।[1] इसके बाद मुंहणोत नैणसी (वि० सं० 1667–1727) की ख्यात और 'राजरूपक'[2] (सं० 1788) में 'राजस्थान' शब्द का प्रयोग हुआ है लेकिन यहाँ इसका प्रयोग 'राजधानी' के अर्थ में है। प्रान्त के अर्थ मे 'राजपूताना' शब्द का सबसे पहले प्रयोग जार्ज टॉमस ने सन् 1800 में किया।[3] इसके बाद कर्नल टॉड ने सन् 1829 मे अपने इतिहास (Annals and Antiquities of Rajasthan) में राजस्थान शब्द का प्रयोग किया और फिर व्यवहार मे यही शब्द प्रान्त के अर्थ में रूढ़ हो गया।[4] आजादी से पूर्व इस प्रान्त में छोटी-बड़ी 21 रियासतें थी। आजादी के बाद धीरे-धीरे उनका विलीनीकरण हुआ और राजस्थान पूरे प्रान्त के वाचक अर्थ मे स्वीकार कर लिया गया। जार्ज ग्रियर्सन ने अपनी पुस्तक 'लिंगविस्टिक सर्वे ऑफ इंडिया' में राजस्थान प्रान्त की भाषा को राजस्थानी कहा है, उसका आधार बहुत सम्भव है कर्नल टॉड की पुस्तक ही हो।

प्राचीन काल में राजस्थान के विभिन्न भूखंडों के अलग-अलग नाम थे जो शासकों के परिवर्तन के साथ समय-समय पर परवर्तित होते रहे हैं यथा—राजस्थान के उत्तरी भाग का नाम 'जांगळ', पूर्वी का मत्स्य (जयपुर, अलवर तथा भरतपुर का कुछ भाग) दक्षिण-पूर्वी का शिवि, दक्षिण का मेदपाट, वागड़, प्राग्वाट, मालव और गुर्जरत्रा, पश्चिम का मरु, माडवल्ल आदि तथा मध्य भाग के अर्बुद व सपादलक्ष आदि नाम थे। साल्वजनपद और परियात्र-मण्डल भी राजस्थान के ही अंग थे।

अरावली पर्वत की श्रेणियां, राजस्थान को दो भागों मे विभाजित कर देती है—एक उत्तरी-पश्चिमी भाग तो दूसरा दक्षिणी-पूर्वी भाग। उत्तरी-पश्चिमी भाग मे बीकानेर, जैसलमेर, जोधपुर और शेखावाटी का अंश सम्मिलित है। सामूहिक रूप से यह भाग मारवाड़ या मरु देश कहलाता था तथा इसी भूखंड की भाषा मरु-भाषा कहलाती थी। इससे प्रकट होता है कि मरुभाषा राजस्थानी के लिए प्राचीन नाम था।

मरु-भाषा—मारवाड़ या मरु देश में बोली जाने वाली भाषा को मरुभाषा की संज्ञा दी गई तथा एक समय यह समूचे प्रान्त की प्रधान एवं साहित्यिक भाषा थी। कालान्तर में राजस्थान का ब्रजमंडल के पास पड़ने वाला क्षेत्र ब्रज एवं गुजरात के निकट पड़ने वाला क्षेत्र गुजराती भाषा के प्रभाव में आ गया।

---

1 राजस्थानी साहित्य का इतिहास : डॉ. पुरुषोत्तम लाल मेनारिया, पृ. 4

2 " वही पृ. 4

3 मिलिटरी मैमायर्स ऑफ मि. जार्ज टॉमस : पृ. 347 सन् 1805

4 एनल्स एण्ड एन्टीक्यूटीज ऑफ राजस्थान बाई कर्नल टॉड

मरूभाषा का प्राचीनतम उल्लेख उद्योतनसूरि लिखित 'कुवलयमाला' कथा-ग्रंथ में मिलता है।[1] यह ग्रंथ 8—9वीं शताब्दी का है। इस ग्रंथ में 18 देश भाषाओं के साथ मरु, गुर्जर, लाट और मालव प्रदेश की भाषाओं के उदाहरण निम्नलिखित रूप में हैं—

'अप्पा-तुप्पा' भणिरे अह पेच्छइ मारुए तत्तो
'न उ रे भल्लउ'' भणिरे अह पेच्छइ गुज्जरे अवरे
'अम्ह काउ तुम्हें' भणिरे अह पेच्छइ लाडे
'भाइ य भइणी तुब्भे भणिरे अह मालवे दिट्ठे

जैन कवियों ने अपने ग्रंथों की भाषा तथा कुछ विद्वानों ने राठौड़ पृथ्वीराज की 'वेलि' की भाषा को भी मरूभाषा स्वीकार की है।

मरूभाषा के दूसरे नाम 'मरूभूमभाषा' 'मारूभाषा', 'मरुदेशीय भाषा' 'मरुवाणी' आदि भी मिलते हैं। वैसे मरूभाषा ही आगे चलकर मारवाड़ी के, परिनिष्ठित साहित्यिक रूप 'डिंगल' के नाम से विख्यात हुई। वैसे रघुनाथरूपकार ने मरूभाषा को 'मुरधर भाषा', 'रघुवरजसप्रकास' के रचयिता ने 'मरुधर भाखा' और 'वंशभास्कर' के रचनाकार ने 'मरुवानी' नाम से अभिहित किया है। इससे स्पष्ट होता है कि सूर्यमल्ल मिश्रण तक आते-आते 'मरुभाषा' या 'मरुवानी', 'डिंगल' के अर्थ में ही रूढ हो गई थी और यह राजस्थानी के ब्रजभाषा प्रभावित रूप 'पिंगल' से सर्वथा भिन्न थी। प्रसिद्ध भाषा वैज्ञानिक डॉ. सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या ने भी इस भिन्नता को प्रकट करते हुए लिखा है कि 'पुरानी मारवाड़ी भाषा' जो कि मारवाड़ी और गुजराती दोनों की मां थी, उसमें साहित्य-सर्जना होने लगी फिर मध्य युग की मारवाड़ी के आधार पर पिंगल की प्रतिस्पर्धी साहित्यिक भाषा 'डिंगल' भी प्रकट हुई।[2]

अतः प्राचीन काल में जिसे 'मरूभाषा' कहा गया, उसी का व्यापक नाम आज राजस्थानी है और इसमें राजस्थान के अन्तर्गत बोली जाने वाली सभी बोलियों का समावेश हो जाता है।

राजस्थानी भाषा की उत्पत्ति—भारतीय आर्य भाषा का सबसे प्राचीन रूप वैदिक संस्कृत है। इसे ही वेदों की भाषा कहा गया है लेकिन सभी वेदों की रचना एक समय में नहीं हुई अतः उनमें भाषा सम्बन्धी अन्तर भी दिखाई देता है। वैदिक संस्कृत से संस्कृत का विकास हुआ। पाणिनि ने इसे व्याकरण के नियमों से बांध दिया। संस्कृत का काल 1500 ई. पू. से 500 ई. पू. तक माना जाता है। संस्कृत

---

1 राजस्थानी भाषा और साहित्य : डॉ. हीरालाल माहेश्वरी, पृ.4
2. राजस्थानी भाषा : डॉ सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या, पृ. 58

से पालि का विकास हुआ और इसका काल 500 ई. पू. से पहली ई. तक है। बौद्ध ग्रंथों में पालि का जो स्वरूप दिखाई देता है वह बोलचाल की भाषा का ही परिष्कृत रूप है। फिर पहली ईसवी तक आते-आते बोलचाल की भाषा में फिर परिवर्तन हुआ और पहली ईसवी से 500 ई. तक इसका जो स्वरूप दिखाई देता है उसे 'प्राकृत' की संज्ञा दी गई। प्राकृत भाषा के समय कई क्षेत्रीय बोलियां भी थी जिनमें मुख्य शौरसेनी, पैशाची, व्राचड़, महाराष्ट्री, मागधी और अर्धमागधी थी। प्राकृतों से ही विभिन्न क्षेत्रीय अपभ्रंशों का विकास हुआ। अपभ्रंश भाषा का काल मोटे तौर पर 500 ई. से 1000 ई. तक है।[1] 1000 ई. से अब तक का समय आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं का है जिसमें राजस्थानी भी एक है। आधुनिक आर्य भाषाओं का जन्म अपभ्रंश के विभिन्न क्षेत्रीय रूपों से इस प्रकार माना जा सकता है–

अपभ्रंश	आधुनिक भाषाएँ तथा उपभाषाएँ
शौरसेनी	पश्चिमी हिन्दी, राजस्थानी, पहाड़ी, गुजराती।
पैशाची	लहँदा, पजाबी।
व्राचड	सिंधी।
महाराष्ट्री	मराठी।
मागधी	बिहारी, बंगला, उड़िया, असमिया।
अर्ध मागधी	पूर्वी हिन्दी।

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट होता है कि राजस्थानी भाषा की उत्पत्ति अपभ्रंश के शौरसेनी रूप से हुई है।

अपभ्रंश मुख्य रूप से पश्चिमी भारत की बोली थी और नागर अपभ्रंश अर्थात् परिनिष्ठित अपभ्रंश इसी बोली का साहित्यिक रूप थी। मार्कण्डेय और रुद्रट ने अपभ्रंश के भी कई भेद स्वीकार किये हैं। ऐसी स्थिति में राजस्थानी किस अपभ्रंश से निकली, इस सम्बन्ध में विद्वानों के विभिन्न मत हैं। डॉ. ग्रियर्सन के अनुसार राजस्थानी की उत्पत्ति नागर अपभ्रंश से हुई है[2] जबकि डॉ. सुनीति कुमार चाटुर्ज्या सौराष्ट्री अपभ्रंश से राजस्थानी का उद्भव मानते हैं।[3] कन्हैया लाल माणिक लाल मुंशी व श्री नरसिंह राव भो. देवटिया गुर्जरी व गुर्जरी अपभ्रंश से राजस्थानी की उत्पत्ति मानते हैं।[4] राजस्थानी विद्वानों में डॉ. मोतीलाल मेना-

1. हिन्दी साहित्य का इतिहास : डॉ. नगेन्द्र, पृ. 22
2. Linguistic Survey of India, vol. IX Part II
3. राजस्थानी भाषा : डॉ. सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या, पृ. 45
4. अ. भा. हि. सा. सम्मेलन के 33वें अधिवेशन का विवरण, पृ. 9

रिया[1], और डॉ. हीरालाल माहेश्वरी[2] भी गुर्जरी अपभ्रंश से राजस्थानी की उत्पत्ति मानते है। इस तरह गुर्जरी अपभ्रंश से राजस्थानी और गुजराती का तथा शौरसेनी अपभ्रंश से हिन्दी का विकास हुआ। जिसे प्राचीन काल में गुर्जरी प्रान्त कहा गया, उसमें गुजरात एवं दक्षिणी पश्चिमी राजस्थान का कुछ भू-भाग सम्मिलित था यही कारण है कि राजस्थान एवं गुजरात का साहित्यिक एवं सांस्कृतिक दृष्टि से परस्पर गहरा सम्बन्ध रहा है। 15वीं शताब्दी तक तो दोनो प्रदेशों की भाषाएं भी एक थी। 16वी शताब्दी मे दोनो का (गुजराती-राजस्थानी) स्वतन्त्र विकास हुआ[3] डॉ. सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या के मतानुसार भी गुजराती और राजस्थानी की उत्पत्ति प्राचीन पश्चिमी राजस्थानी से हुई है और फिर आगे चलकर सोलहवी शताब्दी में गुजराती प्राचीन पश्चिमी राजस्थानी से अलग हो गई।

इस तरह गुजराती और राजस्थानी, दोनो भाषाएं सहोदरा हैं। भारतीय आर्य भाषाओं का आविर्भाव लगभग दसवीं–ग्यारहवीं शताब्दी के आसपास होता है अतः उस समय जो भाषाए धीरे-धीरे विकसित हो रही थी, उन पर अपभ्रंश भाषा का प्रभाव लम्बे समय तक बना रहा। राजस्थानी के साथ भी यही स्थिति रही। 11वी शताब्दी से 15वी शताब्दी के बीच जो भाषा रही, उसके नामकरण के सम्बन्ध मे विद्वानो मे मतभेद रहे हैं। चन्द्रधर शर्मा गुलेरी ने उसे 'पुरानी हिन्दी" मोहनलाल दलीचन्द देसाई ने जूनी-हिन्दी-जूनी गुजराती और कुछ गुजराती विद्वानों ने इसे 'जूनी गुजराती' नाम दिया है जबकि डॉ॰ टैसीटरी और डॉ॰ हीरालाल माहेश्वरी इसे 'प्राचीन पश्चिमी राजस्थानी' भाषा कहते है।[4] इस तरह 11वी से लेकर 15वीं शताब्दी तक का जो साहित्य उपलब्ध होता है, वह राजस्थानी और गुजराती दोनो भाषाओं का है। इसे राजस्थानी का आविर्भाव काल या विकास काल कह सकते है। ग्यारहवी शताब्दी से प्राचीन पश्चिमी राजस्थानी भी बोल चाल की ही भाषा रही होगी। 11वी शताब्दी मे '15वी' शताब्दी तक के साहित्य पर अपभ्रंश भाषा का जो प्रभाव भाव और शिल्प पर पडा, उनमे राजस्थानी का लोकप्रिय छंद 'दोहा' एक है। यह छद भी राजस्थानी को अपभ्रंश की ही देन है। इस काल में जितने भी प्रेमाख्यान (ढोला-मारू रा दूहा, जेठवा-उजळी आदि) लिखे गये, उनमें इस लोकप्रिय छद का खूब प्रयोग हुआ है।

---

1. राजस्थानी भाषा और साहित्य : डॉ. मेनारिया, पृ. 4
   कान्हड़दे प्रबन्ध, पृ 5
2. राजस्थानी भाषा और साहित्य : डॉ. हीरालाल माहेश्वरी, पृ. 34
3. राजस्थानी साहित्य : एक परिचय : प्रो. नरोत्तमदास स्वामी, पृ. 7
4. राजस्थानी भाषा और साहित्य : डॉ॰ माहेश्वरी, पृ. 30

राजस्थानी के स्वतन्त्र रूप की चर्चा करें तो प्रतीत होता है कि पहले राजस्थानी अपभ्रंश से अलग हुई और फिर प्राचीन राजस्थानी से नवीन राजस्थानी के रूप में उसने अपनी अलग पहचान बनाई। प्रो० नरोत्तमदास स्वामी ने नवीन राजस्थानी की निम्नलिखित विशेषताएं बताई हैं जो उसे प्राचीन राजस्थानी से अलग करती है—

1. ए और ओ—इन दो नवीन स्वरों का विकास
2. वर्तनी या हिज्जे में अइ—अउ के स्थान पर ऐ और औ का प्रयोग
3. नान्यर जाति (नपुंसक लिंग) का उठ जाना
4. शब्दों के अन्त में इ, उ और अ के उच्चारण का लोप।[1]

डॉ. सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या ने राजस्थानी भाषा की प्रमुख विशेषताओं को इस प्रकार बताया है—

1. राजस्थानी में 'अ' का उच्चारण 'इ' के रूप में। 'मनुष्य' की जगह 'मिनख'।
2. मूर्धन्य 'ण' और 'ळ' राजस्थानी की दो विशिष्ट ध्वनियां हैं। मूर्धन्य ड-ड़ ध्वनियों की तरफ भी झुकाव है।
3. कई बोलियों में च, छ, ज, झ तालव्य ध्वनियों का उच्चारण दन्त्य सुनाई पड़ता है।
4. 'ऐ' तथा 'औ' यथाक्रम 'ए' और 'ओ' के रूप में उच्चारित होती है।
5. राजस्थानी में महाप्राण अघोष वर्ण के घ, झ, ढ, ध, भ का उच्चारण विशेष एवं मौलिक है।
6. अघोष महाप्राण ध्वनियों ख, छ, ठ, थ, फ में परिवर्तन नहीं होता।
7. घोष महाप्राण घ, झ, ढ, ध, भ शब्दों के पहले प्रयुक्त होने से वे कंठनालीय स्पर्श में मिल जाते हैं।
8. बहुत से स्थानों पर 'ह' लिखा तो नहीं जाता लेकिन अन्त में उच्चारण में 'ह' की ध्वनि का प्रयोग होता है।

राजस्थानी की उपभाषाएं या बोलियां—राजस्थानी यद्यपि मुख्य रूप से राजस्थान की मातृ भाषा है लेकिन इसके बोलने वाले मध्य प्रदेश में इन्दौर तक फैले हुए हैं। इसके अलावा देश के अन्य दूसरे प्रान्तों आसाम, बंगाल, गौहाटी, महाराष्ट्र आदि में भी राजस्थानी भाषी लोग रहते हैं। राजस्थानी बोलने वालों की संख्या तीन करोड़ से ऊपर है। भाषा-विज्ञान के विद्वान राजस्थानी को हिन्दी

---

1. राजस्थानी साहित्य : एक परिचय : प्रो० नरोत्तमदास स्वामी, पृ. 7

से अलग भाषा स्वीकार करते है लेकिन साहित्य जगत मे राजस्थानी को हिन्दी की ही शाखा स्वीकार किया है।

प्रो॰ नरोत्तमदास स्वामी ने राजस्थानी की मुख्य चार बोलियां मानी हैं—

1. पश्चिमी राजस्थानी या मारवाड़ी—जिसका क्षेत्र उदयपुर, जोधपुर, जैसलमेर, बीकानेर और शेखावाटी प्रदेश है।

2. पूर्वी राजस्थानी या ढूंढाडी—जिसका क्षेत्र जयपुर और हाडौती का क्षेत्र है।

3. उत्तरी राजस्थानी—जिसमें अलवर प्रदेश की मेवाती और अहीरी बोलियां आती है।

4. दक्षिणी राजस्थानी—जिसमें मालवा और उसके दक्षिण प्रदेश नेमाड़ आदि की बोलियां सम्मिलित हैं।[1]

राजस्थानी की इन बोलियों में विस्तार और साहित्य की दृष्टि से मारवाड़ी का विशेष महत्त्व है क्योंकि मारवाडी ही सदा से राजस्थान की साहित्यिक भाषा रही है और राजस्थान के अलग-अलग अंचलों मे रहने वाले सभी लेखकों ने मुख्य रूप में इसे ही लिखित रूप में ग्रहण किया है। प्रो॰ नरोत्तमदास स्वामी के मतानुसार डिंगल का मूलाधार भी मारवाडी ही है।[2]

डॉ॰ मोतीलाल मेनारिया[3] और डॉ॰ हीरालाल माहेश्वरी[4] ने राजस्थानी की पांच मुख्य बोलियां मानी हैं जिनका संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है—

1. मारवाड़ी—यह बोली जोधपुर, बीकानेर, जैसलमेर, सिरोही, शेखावाटी क्षेत्र, किशनगढ़—अजमेर और मेरवाडा क्षेत्र तथा कुछ स्थानीय भेदो से गंगानगर, पंजाब एवं हरियाणा के कुछ क्षेत्रो मे भी बोली जाती है। वैसे इसका विशुद्ध रूप जोधपुर और उसके आसपास के स्थानो मे देखने को मिलता है। मुख्य रूप से राजस्थान की साहित्यिक भाषा यही है और इसका साहित्य विशालता और विविधता को लिए हुए है। यह ओजगुण प्रधान भाषा है। सोरठा, छद और मांडराग के लिए यह अपेक्षाकृत अधिक उपयुक्त एवं प्रभावी है। मारवाडी को ही राजस्थान की परिनिष्ठित (स्टेण्डर्ड) बोली माना जा सकता है।

2. ढूंढाड़ी—यह जयपुर, लावा, किशनगढ़ और अजमेर—मेरवाडा के उत्तरी-पूर्वी क्षेत्र मे बोली जाती है। हाडौती इसकी उपबोली है जो कोटा, बूंदी

---

1. राजस्थानी साहित्य : एक परिचय : प्रो॰ नरोत्तमदास स्वामी, पृ. 3-4
2. " " " " 4
3. राजस्थानी भाषा और साहित्य : डॉ. मोतीलाल मेनारिया, पृ. 4
4. राजस्थानी भाषा और साहित्य : डॉ. हीरालाल माहेश्वरी, पृ. 34

और झालावाड़ क्षेत्र में बोली जाती है। इस बोली पर गुजराती एवं ब्रज भाषा का प्रभाव भी दृष्टिगोचर होता है। इस बोली में भी प्रचुर मात्रा में साहित्य उपलब्ध होता है। संत दादूदयाल एवं उनके शिष्य—प्रशिष्यों की रचनाएं इसी बोली में है।

3. मेवाती—यह अलवर, भरतपुर तथा दिल्ली के दक्षिण में रोहतक एवं गुड़गांव जिलों के क्षेत्रों में बोली जाती है। इस पर ब्रजभाषा का प्रभाव अधिक है। इस बोली में थोड़ा साहित्य भी उपलब्ध है, मुख्य रूप से चरणदासी पंथ के प्रवर्तक संत चरणदास और उनकी दो शिष्याओं—दयाबाई और सहजोबाई की रचनाएं मिलती हैं।

4. मालवी—यह बोली मालवा प्रदेश में बोली जाती है। इसमें कुछ विशेषताएं मारवाड़ी और ढूंढाड़ी की पाई जाती हैं। इस पर थोड़ा गुजराती एवं मराठी भाषा का प्रभाव भी है।

5. भीली या बागड़ी—यह बोली डूंगरपुर, बांसवाड़ा और मेवाड़ के कुछ क्षेत्रों में बोली जाती है। भीली को डॉ ग्रियर्सन ने एक स्वतंत्र भाषा स्वीकार किया है लेकिन डॉ. हीरालाल माहेश्वरी इसे स्वतन्त्र भाषा नहीं मानते। उनके मतानुसार इसका मुख्य अंश राजस्थानी के अन्तर्गत है।[1] यह क्षेत्र गुजरात प्रान्त से जुड़ा हुआ है इसलिए इस बोली पर गुजराती भाषा का प्रभाव भी है।

इस तरह हम देखते हैं कि राजस्थानी भाषा की पांच प्रमुख बोलियां या उपभाषाएं हैं जिनमें मारवाड़ी बोली की प्रमुखता है और साहित्य रचना के लिए पूरे प्रान्त में इसे ही अपनाया गया है। पद्य के अलावा गद्य में भी मारवाड़ी बोली का ही प्राधान्य रहा है।

लिपि—राजस्थानी भाषा की लिपि देवनागरी से मिलती है लेकिन कुछ अक्षरों की बनावट में थोड़ा अन्तर है। राजस्थानी में ल और ळ की अलग-अलग ध्वनियां हैं। इनका सही रूप में उच्चारण न करने से कई बार अर्थ-परिवर्तन हो जाता है। यथा—'गाल' शब्द में 'ल' ध्वनि होने से इसका अर्थ कपोल के रूप में है लेकिन अगर गाल की जगह 'ळ' अक्षर का प्रयोग कर दिया जाय तो फिर 'गाळ' का अर्थ गाली से हो जायेगा। इसी भांति 'ड' और 'ड़' की भी राजस्थानी में अलग-अलग ध्वनियां हैं तथा इनका अलग-अलग स्थानों पर अर्थ-सन्दर्भ में ही प्रयोग किया जाता है अन्यथा अर्थ-परिवर्तन हो जाता है। राजस्थानी में हिन्दी के स, श, ष वर्णों की जगह केवल स (दन्त्य रूप) का ही प्रयोग होता है।

---

1. राजस्थानी भाषा और साहित्य : डॉ. हीरालाल माहेश्वरी, पृ. 35

डिंगल और पिंगल—राजस्थानी साहित्य डिंगल और पिंगल दो भाषाओं में उपलब्ध होता है। डॉ मोतीलाल मेनारिया के अनुसार 'डिंगल राजस्थान की बोलचाल की भाषा राजस्थानी का साहित्यिक रूप है और पिंगल की अपेक्षा अधिक प्राचीन, अधिक साहित्य सम्पन्न तथा अधिक ओजगुण विशिष्ट है।[1] राजस्थान में पिंगल भाषा मे भी काफी साहित्य मिलता है। पिंगल का अधिकांश साहित्य भाट जाति के कवियों द्वारा लिखित है तो डिंगल का अधिकांश साहित्य चारण कवियों द्वारा। भाट जाति चारण जाति से सर्वथा भिन्न है। राजस्थान मे पिंगल भाषा का नाम भाट जाति के आधार पर 'भाट-भांयखा' अर्थात् भाटों की भाषा भी है। इसके प्रमाण में सोलहवी शताब्दी के चारण कवि उदैराम द्वारा रचित 'कवि कुल बोध' ग्रन्थ मे प्रस्तुत दोहा मिलता है—

चारण डिंगल चातुरी, पिंगल भाट - प्रकास ।
गुण सल्या-कल-बरण-गण, यांगे करो उजास ॥

अतः डिंगल और पिंगल दोनो एक दूसरे से भिन्न भाषाएं रही हैं तथा व्याकरण छंद-शास्त्र आदि की दृष्टि से दोनों भिन्न है। पिंगल का विकास शौरसेनी अपभ्रंश से हुआ है तो डिंगल का गुर्जरी अपभ्रंश से। कहते हैं कि चारण और भाटो मे इन दोनों भाषाओं को लेकर लम्बे समय तक प्रतिद्वंद्विता रही। आगे चलकर चारणों ने भी पिंगल को अपनाया। पिंगल मे चरित्र-काव्य, पौराणिक काव्य, महाभारत काव्य और भक्ति काव्य उपलब्ध है। सूर्यमल्ल, स्वरूपदास गणेशपुरी जैसे कवियो ने पिंगल भाषा में भी रचना की। सूर्यमल्ल के 'वंशभास्कर' ग्रन्थ का तीन-चौथाई भाग पिंगल में है। इसी भांति पृथ्वीराज रासो, रतन रासो, विजयपाल रासो आदि ग्रन्थो में भी पिंगल भाषा का प्रयोग ही किया गया है।

यहां इस बात पर भी विचार कर लेना चाहिए कि डिंगल और पिंगल शब्दों को लेकर भी विद्वानो मे काफी चर्चा रही है। एक मत के अनुसार 'पिंगल' 'डिंगल' से ज्यादा पुरानी है और पिंगल के वजन पर ही डिंगल - शब्द - पड़ा है और अधिकांश विद्वान यही मानते है लेकिन डॉ. मोतीलाल मेनारिया के मतानुसार 'डिंगल' शब्द पिंगल से अधिक पुराना है अतः पिंगल के सादृश्य पर डिंगल नाम रखे जाने की कल्पना निर्मूल है। इस प्रकार यह एक विवादास्पद प्रश्न है। खैर, यह भी संभव हो सकता है डिंगल और पिंगल शब्दो का प्रयोग साथ-साथ हुआ लेकिन इतना निश्चित है कि 'पिंगल' डिंगल से भिन्न है। डॉ. सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या भी डिंगल और पिंगल को दो भिन्न भाषाएं मानते है[2]

---

1. डिंगल मे वीर रस - मोतीलाल मेनारिया, पृ. 1
2. भारतीय आर्य भाषाएं और हिन्दी : डॉ. चाटुर्ज्या, पृ. 185

इसी भांति 'डिंगल' शब्द को लेकर भी विद्वानों में कुछ भ्रांतियां है जैसा कि हम ऊपर कह आये है कि डॉ. मोतीलाल मेनारिया डिंगल को एक स्वतन्त्र भाषा के रूप मे स्वीकार करते है लेकिन कुछ विद्वान डिंगल को एक काव्य शैली भी मानते हैं। प्रो. नरोत्तमदास स्वामी के अनुसार डिंगल राजस्थानी से भिन्न कोई भाषा नहीं, वह राजस्थानी की ही एक काव्यगत शैली विशेष है। साधा ण राजस्थानी और डिंगल मे मुख्य अन्तर, जैसा कि कहा जा चुका है, या तो शब्दावली का है या शब्दो की वर्तनी का; व्याकरण का अन्तर सर्वथा नगण्य है। [1] इससे यह प्रकट होता है कि बहुत संभव है डिंगल भी कभी बोल-चाल की भाषा रही हो, फिर बाद में डिंगल का प्रयोग साहित्यिक भाषा के लिए किया जाने लगा हो। प्रो. स्वामी जी के शब्दो मे डिंगल अपभ्रंश शैली का ही विकसित रूप है। कभी 'डिंगल' शब्द का प्रयोग सम्पूर्ण राजस्थानी भाषा के लिए तो कभी चारणी शैली के लिए भी किया जाता है।

'डिंगल' शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग राजस्थान के प्रसिद्ध कवि आसिया बांकी दास ने अपनी रचना 'कुकवियतीसी' (सं. 1871) के निम्नलिखित दोहा में किया है—

> डिंगलियां मिलियां करै पिंगल तणों प्रकास ।
> संस्कृती है कपट सज पिंगल पढ़ियां पास ।।[2]

संवत् 1863 में सेवग मछाराम ने डिंगल गीतों का विवेचन करने वाला ग्रन्थ 'रघुनाथ रूपक' डिंगल में लिखा लेकिन उन्होने डिंगल शब्द का प्रयोग नहीं किया अपितु, अपनी भाषा को मरू भाषा या मरूभूमि भाषा कहा।

बांकीदास के बाद डिंगल शब्द का प्रयोग करने वाले कवियो मे सूर्यमल्ल मिश्रण का नाम उल्लेखनीय है। वे 'वंशभास्कर' ग्रन्थ में लिखते है—

> डिंगल उपनामक कहुंक मरू-बानी हु विशेष ।
> अपभ्रंश जामें अधिक, सदा वीर रस श्रेय ।।[3]

इससे डिंगल का अपभ्रंश की तरफ झुकाव और वीर रस के उपयुक्त होने की बात सिद्ध होती है। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि डिंगल प्रारम्भ में बोलचाल की भाषा रही हो लेकिन आगे चलकर जब उसने साहित्यिक भाषा का रूप धारण कर लिया तो वह डिंगल के रूप में स्थापित हो गई हो। अतः डिंगल का प्रयोग कभी सम्पूर्ण राजस्थानी भाषा के लिए तो कभी शैली के रूढ़ अर्थ मे भी प्रयुक्त होता रहा, वैसे चारणो द्वारा प्रयुक्त राजस्थानी का साहित्यिक रूप ही 'डिंगल' नाम से प्रसिद्ध रहा है।[4]

1. राजस्थानी साहित्य : एक परिचय; प्रो. नरोत्तमदास स्वामी, पृ. 17
2. बांकीदास ग्रन्थावली, भाग 2, पृ. 81 : ना. प्र. स.
3. वंशभास्कर, प्रथम भाग, पृ. 140
4. संयुक्त राजस्थान, वर्ष 6, संख्या 8, मार्च 1957, पृ. 31

डिंगल शब्द की व्युत्पत्ति—'डिंगल' शब्द की व्युत्पत्ति के सम्बन्ध में निम्नलिखित मत दिखाई देते है। वैसे ये सभी व्युत्पत्तियां अनुमानाश्रित हैं—

1. डॉ. एल. पी. टैसीटरी डिंगल को गंवारू और अनियमित भाषा मानते थे लेकिन ऐसा कहना तर्कसंगत प्रतीत नहीं होता। डिंगल पढ़े-लिखे चारणों की एव राज दरबार मे सम्मान प्राप्त भाषा थी जिसका अपना छंद-शास्त्र, रस, अलंकार आदि थे।
2. श्री हर प्रसाद शास्त्री डिंगल की व्युत्पत्ति 'डगळ' या 'डगर' शब्द से करते है लेकिन यह भी मान्य नहीं है। डगळ पहले जंगल या मरुदेश की भाषा का नाम था, पिंगल के साम्य पर उसका नाम डिंगल हो गया। अपने समर्थन में ये एक दोहा भी उद्धृत करते हैं—

   दीसे जंगल-डगल जेथ जल बगळ चाटे ।
   अनहुंता गळ दिये, गळा हुंता गल काटै ॥
3. श्री गजराज ओझा के अनुसार 'ड' वर्ण की बहुलता के कारण पिंगल के वजन पर डिंगल नाम रखा गया है लेकिन कहीं-कहीं 'ड' वर्ण की प्रधानता के आधार पर समस्त डिंगल को 'ड' वर्ण प्रधान मानना युक्तिसंगत प्रतीत नहीं होता।
4. श्री पुरुषोत्तमदास स्वामी के अनुसार डिंगल शब्द डिम+गळ से बना है। 'डिम' का अर्थ डमरू की ध्वनि और 'गळ' का अर्थ गले से है अतः गले से निकलकर जो कविता डिम-डिम की तरह वीरों के हृदय को प्रोत्साहित करती है, उसे डिंगल कहते हैं। लेकिन यह मत भी निराधार है।
5. श्री किशोरसिंह बार्हस्पत्य के अनुसार डिंगल शब्द 'डीङ विहायसा गतौ' अर्थात् उड़ना अर्थ वाली डी धातु से बना है और इसका अर्थ है उड़नेवाली। श्री बदरीदान कविया और सत्यदेव आढा बृहस्पतजी का समर्थन करते है और कहते हैं कि डिंगल कविता ऊंचे स्वरों में पढ़ी जाती थी अतः उसे उड़ने वाली कहा गया है।
6. डॉ. मोतीलाल मेनारिया ने डिंगल शब्द का सम्बन्ध डींग से माना है। डिंगल का अर्थ है—डींग वाली भाषा अर्थात् वह भाषा जिसके ग्रन्थों में डींग मारी गई है। चारण लोग आश्रयदाता की प्रशंसा में अतिशयोक्तिपूर्ण रचनाएं करते थे। डॉ. मेनारिया के अनुसार आज भी वृद्ध चारण डिंगल न कहकर डींगल कहते हैं।
7. प्रो. नरोत्तमदास स्वामी ने डिंगल की व्युत्पत्ति के सम्बन्ध मे दो प्रकार की संभावनाएं व्यक्त की हैं जिनमे एक संभावना के अनुसार बहुत संभव है कि पिंगल नागराज के समान उडिंगल नागराज की कल्पना की गई। यह उडिंगल शब्द ही डिंगल का मूल है।

इस प्रकार प्रत्येक विद्वान ने अनुमान के आधार पर डिंगल शब्द की व्युत्पत्ति को तलाशने की कोशिश की है लेकिन ठोस प्रमाण के अभाव में किसी एक मत का समर्थन करना उचित प्रतीत नहीं होता।

डिंगल का साहित्य विशाल है। डिंगल साहित्य के महत्त्व को प्रतिपादित करते हुए डॉ. मोतीलाल मेनारिया ने लिखा है कि डिंगल साहित्य में राजस्थान के सैकड़ों वर्षों के संस्कार, उसका संघर्षमय लोक-जीवन तथा उसका इतिहास प्रतिबिम्बित होता है और उसमें उसकी भावनाएं व्यक्त हुई है।[1] डिंगल साहित्य में इतिहास विषयक सामग्री की प्रचुरता है अतः मध्ययुगीय इतिहास लेखन में डिंगल का साहित्य काफी सहायक हो सकता है। डिंगल का साहित्य गद्य और पद्य दोनों में मिलता है। गद्यात्मक सामग्री ख्यात, वात, विगत और पीढ़ी वंशावलियों के रूप में उपलब्ध होती है। चरित्र नायकों के नाम पर लिखे गये ग्रन्थों में रासो प्रकास, विलास, रूपक, वचनिका और छन्दों के आधार पर लिखे गये ग्रन्थों में नीसाणी, झूलणा, वेल, झमाल, गीत, तथा दूहा आदि हैं। इसी प्रकार डिंगल में फुटकर कविता, दोहा, कवित्त और गीतो के छंदों में लिखी हुई सामग्री भी प्राप्त होती है।

डिंगल कविता मुख्य रूप से वीर रसात्मक है। अन्य रसों का भी यथास्थान अच्छा परिपाक हुआ है। डिंगल के अलंकारो में वयणसगाई अत्यन्त लोकप्रिय अलंकार है और यह डिंगल का अपना अलंकार है। संस्कृत और हिन्दी मे इस अलंकार का कोई उल्लेख नहीं मिलता।

राजस्थानी साहित्य : काल-विभाजन—राजस्थानी साहित्य की एक लम्बी परम्परा रही है जिसमें कई प्रकार के उतार-चढ़ाव एवं दिशा-परिवर्तन की स्थिति समय-समय पर उपस्थित होती रही है। ऐसी स्थिति में साहित्य के विकास-क्रम को समझना और उसमें उत्पन्न होने वाले विविध परिवर्तनों को प्रवृत्तियों के आधार पर प्रस्तुत करना आवश्यक हो जाता है। सबसे पहला प्रश्न तो हमारे सामने यह उपस्थित होता है कि काल- विभाजन का आधार क्या हो ? जिस प्रकार प्रवाह के अन्दर अनेक धाराएं होती हैं, उसी प्रकार साहित्य में भी अनेक प्रवृत्तियां होती हैं; और इन प्रवृत्तियों का आदि-अन्त या उतार-चढ़ाव ही इतिहास का काल-विभाजन अर्थात् विभिन्न युगों की सीमाओं का निर्धारण करता है।[2] इस तरह किसी भी साहित्य के काल-विभाजन का आधार उस काल की प्रमुख प्रवृत्तियाँ और साहित्यिक चेतना होनी चाहिए। जिस काल में जिस प्रवृत्ति की प्रधानता हो, उसी आधार पर उस काल का नामकरण और सीमा-निर्धारण किया जाना चाहिए। राजस्थानी का प्राचीन साहित्य आज भी हस्तलिखित ग्रन्थों एवं मौखिक परम्परा

1. राजस्थानी भाषा और साहित्य : डॉ. मोतीलाल मेनारिया; पृ. 48
2. हिन्दी साहित्य का इतिहास : डॉ. नगेन्द्र पृ; 55

में बिखरा पड़ा है अतः जब तक उनका पूरा संकलन नहीं हो पाता तब तक उसके साहित्य का मूल्यांकन-विवेचन और साहित्यिक प्रवृत्ति का निर्धारण असंभव है।

जहाँ तक राजस्थानी साहित्य के काल-विभाजन और नामकरण का प्रश्न है डॉ. पुरुषोत्तमलाल मेनारिया के अतिरिक्त किसी ने भी साहित्यिक प्रवृत्ति के आधार पर नामकरण नहीं किया है। काल-विभाजन करने वाले विद्वानों में डॉ. एल. पी. टैसीटरी, डॉ. मोतीलाल मेनारिया, सीताराम लालस, गजराज ओझा आदि हैं। प्रो. नरोत्तमदास स्वामी और डॉ. हीरालाल माहेश्वरी ने राजस्थानी के इतिहास का काल-विभाजन और नामकरण लगभग एक जैसा किया है जो निम्नलिखित है—

प्रारम्भ काल	सन् 1050 से 1450 तक
मध्यकाल	सन् 1450 से 1850 तक
आधुनिक काल	सन् 1850 से अब तक[1]

आधुनिक काल को भी दो भागों में विभाजित किया गया है—

स्वतन्त्रता पूर्व	सन् 1850 से 1947 तक
स्वातन्त्र्योत्तर	सन् 1947 से आगे

काल की सीमा का निर्धारण करते हुए प्रो. नरोत्तमदास स्वामी ने उन विशेषताओं की तरफ संकेत किया है जो सं. 1200 के आसपास स्पष्ट होने लगी थी और इस आधार पर ही आधुनिक भाषाओं के काल-विभाजन की सीमा सं. 1200 के आसपास मानी-जानी चाहिए। डॉ. हीरालाल माहेश्वरी का मत है कि सं. 1200 के पहले ही उन विशेषताओं के कुछ रूप उभरने लगे होंगे अतः लगभग संवत् 1100 से प्राचीन पश्चिमी राजस्थानी का आदिकाल माना जा सकता है। प्रारम्भ में गुजराती और राजस्थानी एक ही थी। कुमारपाल में हेमचन्द्र का जन्म संवत् 1145 और मृत्यु सं. 1229 मानी गई है। हेमचन्द्र के समय में जो बोल-चाल की भाषा थी, उसे 'ऊगती गुजराती' कहा गया था लेकिन संभव है यह 'ऊगती गुजराती' हेमचन्द्र के समय से पूर्व प्रचलित रही होगी अतः गुजराती के विद्वानों ने भी गुजराती भाषा की उत्पत्ति बारहवीं शताब्दी से मानी है। इससे प्रकट होता है कि गुजराती, प्राचीन पश्चिमी राजस्थानी अथवा 'ऊगती गुजराती' का काल मोटे तौर पर सं. 1100 से माना जाना चाहिए।

राजस्थानी और संवैधानिक मान्यता—भाषा-वैज्ञानिक ढंग से राजस्थानी भाषा के स्वरूप का विवेचन करने पर प्रतीत होता है कि राजस्थानी स्वतन्त्र भाषा है जिसका नया और पुराना विशाल साहित्य है तथा जिसका अपना शब्द-कोश एवं व्याकरण है। आज राजस्थानी भाषा में निरन्तर लिखा जा रहा है तथा राजस्थानी का साहित्य अधुनातन प्रवृत्तियों से जुड़ा हुआ है। यद्यपि देश के प्रमुख भाषा

[1] History of Rajasthani Literature : Dr. Hiralal Maheshwari P. 26

वैज्ञानिकों ने इसे स्वतन्त्र भाषा स्वीकार किया है लेकिन कुछ विद्वान राजस्थानी को हिन्दी की ही शाखा स्वीकार करते हुए उसकी संवैधानिक मान्यता में बाधा पहुंचा रहे हैं. ऐसे लोगों का कहना है कि राजस्थानी की कोई लिपि नहीं, राजस्थानी में एकरूपता का अभाव है तथा आधुनिक साहित्य मे सृजन की स्थिति भी संतोषजनक नहीं है। दूसरी तरफ सरकार जनसंख्या के आंकडो के आधार पर यह जानना चाहती है कि राजस्थानी भाषी लोगों की आबादी कितनी है। इस तरह राजस्थानी की संवैधानिक मान्यता का प्रश्न लम्बे समय से उठाया जा रहा है लेकिन अभी इस सम्बन्ध में कुछ भी नहीं हुआ है।

यहाँ इस बात पर भी थोड़ा विचार कर लेना चाहिए कि राजस्थानी को भाषा स्वीकार न करने वाले लोगों के तर्क बेबुनियाद हैं। जब मराठी देवनागरी लिपि में लिखी जाती है और वह स्वतन्त्र भाषा का दर्जा प्राप्त कर लेती है तो राजस्थानी की लिपि देवनागरी होते हुए, उसके सम्बन्ध में ऐसा तर्क क्यों दिया जाता है ? इसी भांति राजस्थानी की एकरूपता का प्रश्न केवल इसलिए पैदा किया जा रहा है ताकि अलग-अलग क्षेत्रों में अपनी-अपनी बोली को राजस्थानी मानने का विवाद पैदा हो जाय। वैसे राजस्थानी भाषा के अन्तर्गत पांच बोलियां हैं लेकिन इनमें जिसे मारवाडी कहते हैं उसी का साहित्यिक रूप राजस्थानी है और वही इस प्रान्त की प्रमुख प्रतिनिधि भाषा बन सकती है। इस तरह राजस्थानी की बोलियों को स्वीकार करते हुए राजस्थानी का एक परिनिष्ठित साहित्यिक रूप है और आज उसमें उत्कृष्ट कोटि का नया-पुराना साहित्य उपलब्ध है। केन्द्रीय साहित्य अकादमी ने इसी आधार पर राजस्थानी भाषा को साहित्यिक मान्यता प्रदान कर रखी है तथा प्रकाशन एवं पुरस्कार की योजनाओं में राजस्थानी भी उसी प्रकार सम्मिलित है जैसे देश की अन्य संवैधानिक मान्यता प्राप्त भाषाएं हैं। राज्य सरकार ने राजस्थानी भाषा के लिए 'राजस्थानी भाषा, साहित्य एवं संस्कृति अकादमी' (बीकानेर) की स्थापना की तथा जोधपुर एवं उदयपुर विश्वविद्यालयों में राजस्थानी भाषा का स्वतन्त्र विभाग भी है जहां स्नातकोत्तर डिग्री राजस्थानी भाषा में दी जाती है। इसी तरह माध्यमिक शिक्षा बोर्ड (अजमेर) ने भी राजस्थानी भाषा को ऐच्छिक विषय के रूप मे लागू कर रखा है। आज राजस्थानी में स्तरीय पत्रिकाओं एवं नवलेखन की स्थिति भी काफी संतोषजनक कही जा सकती है। ऐसी स्थिति में राजस्थानी भाषा को संविधान की आठवीं सूची में सम्मिलित न करना राजस्थानी के विकास में बाधा उपस्थित करना है। यह निश्चित है कि किसी भी प्रान्त का सांस्कृतिक विकास तभी संभव है जब उस प्रान्त के लोगों की मातृभाषा को संवैधानिक मान्यता दी जाय। इतनी समृद्ध और उत्कृष्ट रचनाओं वाली राजस्थानी भाषा को संवैधानिक मान्यता न मिल पाने का एक मात्र कारण, लोगों की भाषाई जागरूकता का अभाव है।

अध्याय 2

आरम्भ काल (सन् 1050 से 1450 ई.)

किसी भी काल के साहित्य के इतिहास को समझने के लिए आवश्यक है कि हम उस परिवेश को भी अच्छी तरह समझलें क्योंकि साहित्य अपने परिवेश की ही उपज होता है। इस दृष्टि से आरम्भ काल की राजनीतिक, धार्मिक और सामाजिक स्थितियों पर भी थोड़ा विचार कर लेना चाहिए। अन्तिम हिन्दू सम्राट हर्षवर्द्धन के समय से ही देश पर यवनों के आक्रमण प्रारम्भ हो गये थे लेकिन हर्षवर्द्धन उन्हें रोकने में असमर्थ रहा। हर्षवर्द्धन की मृत्यु के बाद देश में केन्द्रीय सत्ता का ह्रास हो गया था और जो राजपूत राज्य उस समय सामने आये, वे निरन्तर युद्धों की आग में जलते रहे। 'आठवीं शताब्दी से पन्द्रहवीं शताब्दी ईस्वी तक के भारतीय इतिहास की राजनीतिक परिस्थिति हिन्दू-सत्ता के धीरे-धीरे क्षय होने तथा इस्लाम-सत्ता के धीरे-धीरे उदय होने की करुण कहानी है।'[1] इसका तात्पर्य यह है कि यह काल राजनीतिक दृष्टि से उथल-पुथल, आक्रमण, युद्ध अव्यवस्था, अस्थिरता और राजाओं की पारस्परिक फूट का था फलतः इस परिवेश में जो साहित्य लिखा गया, उसमें भी इन परिस्थितियों का संकेत स्पष्ट दिखाई देता है अतः किसी एक प्रवृत्ति की प्रधानता इस काल के साहित्य में नहीं रही।

राजनैतिक परिवेश :—हर्षवर्द्धन की मृत्यु के बाद उत्तरी भारत में गुर्जर प्रतिहारों ने अपना विशाल तथा शक्तिशाली साम्राज्य स्थापित किया था, लेकिन प्रतिहारों की केन्द्रीय सत्ता के कमजोर होते ही अन्य सामन्तों ने अपने-अपने स्वतन्त्र राज्य स्थापित कर लिये। ऐसे सामन्तों में चौहानों का स्थान सर्वोपरि था। इनके सांभर, जालोर, नागौर, भडौच, नाडोल आदि मुख्य शासन केन्द्र थे। इनमें सांभर या सपादलक्ष के चौहान इतिहास में अपनी शूरवीरता और साम्राज्यवादी महत्त्वाकांक्षा के लिए विशेष प्रसिद्ध रहे हैं। पृथ्वीराज चौहान तृतीय (1172-1192) जब सिंहासनारूढ हुआ उस समय मुसलमानों का दबाव बढ़ता ही जा रहा था। 1178ई. में मोहम्मद गोरी ने पृथ्वीराज के राज्य से गुजर कर गुजरात पर आक्रमण किया

---

1. हिन्दी साहित्य का इतिहास : डॉ. नगेन्द्र; पृ. 70

जिससे उसको पराजित होना पड़ा। चौहानों को दक्षिण-पश्चिम से चालुक्यों का भी भय था। दक्षिण-पूर्व में उस समय महोबा के चंदेल शासक थे। 1282 में पृथ्वीराज ने चंदेलों पर आक्रमण किया। इस युग में आल्हा-ऊदल ने तत्कालीन राजा परमारदी की सहायता की थी। पृथ्वीराज रासो और परमाल रासो ग्रंथ में इस युद्ध का उल्लेख मिलता है। इसके बाद पृथ्वीराज ने गुजरात के चालुक्यों पर आक्रमण किया। पृथ्वीराज और मोहम्मद गौरी के बीच प्रथम संघर्ष 1190-91 में हुआ था।

दसवीं शताब्दी के अंतिम दशकों में शाकम्भरी के चौहानों की एक शाखा ने नाडोल में अपना राज्य स्थापित कर लिया था। चौहानों की एक अन्य शाखा ने परमारों को परास्त करके जालोर में अपना राज्य कायम किया। इस वंश के संस्थापक कीर्तिपाल से लेकर कान्हड़दे तक के शासकों ने तुर्कों से निरन्तर संघर्ष किया।

मेवाड़ में गुहिल वंश का अत्यधिक प्रभाव था। इस वंश में सबसे शक्तिशाली शासक बप्पा रावल हुए जिनका समय 8वीं शताब्दी माना जाता है। इस वंश को समय-समय पर चित्तौड़ के मोर्यों, कन्नौज के प्रतिहारों, गुजरात के चालुक्यों, मालवा के परमारों और शाकम्भरी के चौहानों के अधिकार में रहना पड़ा। बारहवीं सदी के अन्त में जालोर के कीर्तिपाल ने मेवाड़ के शासक सामन्तसिंह को परास्त करके मेवाड़ पर अधिकार प्राप्त कर लिया था। सामन्तसिंह बागड़ चला गया और नये राज्य की नींव रखी। इधर उसके छोटे भाई कुमारसिंह ने सिसोदिया सामन्त की सहायता से पुनः मेवाड़ पर अधिकार प्राप्त किया।

रणथम्भौर के चौहान शासकों में अन्तिम एवं महत्वपूर्ण शासक हम्मीरदेव था। 'हम्मीरकाव्य' और 'हम्मीर रासो' में हम्मीर के शौर्य और पराक्रम का वर्णन है। 1299 ई. में अलाउद्दीन खिलजी ने रणथम्भौर पर आक्रमण किया और काफी समय तक रणथम्भौर की घेराबंदी की। हम्मीर की रानियों ने अन्य राजपूत वीरांगनाओं के साथ जौहर किया और स्वयं हम्मीर भी अलाउद्दीन के साथ युद्ध करते हुए वीरगति को प्राप्त हुआ। सन् 1301 में रणथम्भौर पर अलाउद्दीन का अधिकार हो गया इसके बाद उसने चित्तौड़ पर आक्रमण किया। इस समय चित्तौड़ पर राणा रतनसिंह का शासन था। इस आक्रमण का एक कारण अलाउद्दीन का राणा रतनसिंह की सुन्दर रानी पद्मिनी को प्राप्त करना था। अन्त में रानी ने जौहर किया और अलाउद्दीन को चित्तौड़ पहुँचने पर चिता की राख प्राप्त हुई। मलिक मोहम्मद जायसी के महाकाव्य 'पद्मावत' की कथा का आधार भी यही ऐतिहासिक प्रसंग है। रणथम्भौर और चित्तौड़ को जीतने के बाद अलाउद्दीन ने जालोर के स्वतन्त्र राज्य को जीतने का निश्चय किया उस समय जालोर में कान्हड़दे का शासन था। इस युद्ध में भी राजपूत ललनाओं ने जौहर रचाया तो कान्हड़दे, वीरमदेव,

जेता आदि लोग दुर्ग की रक्षा करते हुए वीरगति को प्राप्त हुए। जालोर का पतन सन् 1311–12 में हुआ था। इस युद्ध में कान्हड़दे के परिवार के एक सदस्य मालदेव ने सुल्तान के सामने आत्म-समर्पण कर दिया था बाद में सुल्तान ने चित्तौड़ का शासन मालदेव को सौंप दिया। 'कान्हड़दे प्रबंध' में कान्हड़दे के युद्धों का विस्तृत वर्णन मिलता है।

जब चित्तौड़ पर अलाउद्दीन का अधिकार हो गया था तो बाद में सन् 1336 के आसपास हम्मीर ने चित्तौड़ पर पुनः अधिकार जमाया। हम्मीर के बाद उसका बड़ा पुत्र क्षेत्रसिंह मेवाड़ का राणा बना और उसने 1382 ई. तक शासन किया। क्षेत्रसिंह के बाद महाराणा लाखा ने 1382 से 1397 ई. तक चित्तौड़ पर शासन किया। वृद्ध लाखा ने मारवाड़ नरेश राव चूड़ा की पुत्री तथा रणमल की बहिन हंसा से विवाह किया। लाखा के पुत्र चूंडा को यह प्रतिज्ञा करनी पड़ी कि यदि हंसा बाई के पुत्र उत्पन्न हुआ तो वह मेवाड़ के सिंहासन पर अपना अधिकार त्याग देगा और हंसाबाई का पुत्र ही मेवाड़ का राणा बनेगा। इस विवाह के तेरह महीने बाद हंसाबाई ने पुत्र को जन्म दिया जिसका नाम मोकल रखा गया। सन् 1397 में लाखा की मृत्यु हो गई। बाद में जब चूंडा और हंसाबाई के सम्बन्धों में तनाव उत्पन्न हो गया तो चूंडा मेवाड़ छोड़कर मांडू चला गया। चूंडा के चले जाने के बाद रणमल की स्थिति दरबार में सर्वोपरि हो गई। यद्यपि उसने महाराणा की निष्ठापूर्वक सेवा की किन्तु उसके बढ़ते हुए प्रभाव को देखकर सिसोदिये सामन्त आतंकित हो गये। इधर रणमल के पिता राव चूंडा की मृत्यु हो गई और रणमल का छोटा भाई कान्हा नया शासक घोषित हुआ। संयोगवश कान्हा की मृत्यु के बाद मारवाड़ में सिंहासन-प्राप्ति के लिए गृह युद्ध हुआ लेकिन महाराणा मोकल की सहायता से रणमल मारवाड़ के सिंहासन पर बैठ गया।

रणमल के चले जाने पर मालवा के सुलतान होशंगशाह ने मेवाड़ के गागरोण दुर्ग पर आक्रमण किया। दुर्ग का रक्षक अचलदास खीची इस युद्ध में वीरगति को प्राप्त हुआ। 'अचलदास खीची री वचनिका' में इस युद्ध का पूरा उल्लेख मिलता है।

मोकल की मृत्यु के बाद चित्तौड़ पर कुंभा ने सन् 1433 से 1468 तक शासन किया। उसने मेवाड़ के निर्माण के लिए जितना कार्य किया, उतना अन्य किसी राणा ने नहीं किया।

इस प्रकार तत्कालीन राजनीतिक परिस्थितियों से यह तथ्य प्रकट होता है कि यह युद्धों का समय था तथा युद्ध निरन्तर होते रहते थे, यही कारण है कि इस काल में जो चारण-साहित्य उपलब्ध होता है उस पर वीर रस की गहरी छाप है।

राजस्थान के आरम्भ काल में प्राप्त होने वाला साहित्य अग्रलिखित रूप में विभाजित किया जा सकता है—

1. जैन साहित्य
2. लौकिक साहित्य
3. चारण साहित्य ।

जैन साहित्य—राजस्थानी के आरम्भ काल में जैन साहित्य का महत्त्वपूर्ण स्थान है । अपने मत का प्रचार-प्रसार करने के लिए जिस प्रकार जैन साधुओं ने प्राकृत और अपभ्रंश को अपनाया था, ठीक इसी प्रकार आगे चलकर राजस्थानी भाषा को भी माध्यम के रूप मे स्वीकार किया । जैन साहित्य काफी विशाल और प्रचुर मात्रा में लिखा गया है । यह गद्य और पद्य दोनों रूपों में मिलता है । विषयगत और शैलीगत विविधता की दृष्टि से जैन साहित्य का आरम्भ काल में विशिष्ट योगदान माना जायेगा । जैन साहित्य का मुख्य स्वर धार्मिक और चरित्र-निर्माण का रहा है । रस की दृष्टि से उसमें शान्त रस की प्रधानता है । प्रो० नरोत्तमदास स्वामी के शब्दों में गद्य साहित्य की प्रचुरता उसकी दूसरी बड़ी विशेषता है । हिन्दी आदि भाषाओं में प्राचीन गद्य का अभाव-सा है पर राजस्थानी में चौदहवीं शताब्दी से गद्य साहित्य बराबर मिलता रहा है और प्रभूत परिमाण में मिलता है ।[1] जैन साहित्य का कथा-साहित्य तो स्वयं अपनी विशिष्टता रखता है । इन काव्यों के माध्यम से जैन मुनियों का मुख्य लक्ष्य जनसाधारण को धर्म की तरफ प्रेरित करना था यही कारण है कि इन काव्यो की भाषा साधारण बोलचाल की है ।

डॉ. हीरालाल माहेश्वरी ने जैन साहित्य के पद्य को मोटे रूप मे चार भागो में विभाजित किया है[2]—

1. चरित काव्य या कथा काव्य—चरित काव्य दो प्रकार के मिलते हैं—ऐतिहासिक और पौराणिक । ऐसे काव्य जैन पुराणों मे वर्णित महापुरुषों और प्रमुख व्यक्तियों से सम्बद्ध हैं । ये विभिन्न काव्य रूपों में लिखे गये हैं, यथा—रास, चौपई, ढाल, पवाड़ा, संधि, चर्चरी, प्रबंध, चरित्र, सम्बन्ध, आख्यानक, कथा आदि ।
2. उत्सव काव्य—ये किसी विशेष त्यौहार या अवसर से सम्बन्धित होते हैं । इनको फागु, धमाल, बारहमासा, विवाहलो, वेलि, धवल, मंगल आदि नाम दिये गए हैं ।
3. नीति काव्य—प्रत्येक कवि ने नीति या उपदेश देने के लिए ऐसे काव्य की रचना की है । इसके रचना-प्रकारों मे संवाद, कक्का-मातृका-बावनी, कुलक, हीयाली आदि है ।
4. स्तुति काव्य—ऐसे काव्यों में विभिन्न तीर्थंकरों, तीर्थस्थलों, साधुपुरुषों, आदि की स्तुति की गई है । ये रचनाएं बहुत छोटी-छोटी हैं और

1. राजस्थानी साहित्य : एक परिचय; प्रो० नरोत्तमदास स्वामी, पृ. 22–23.
2. सांस्कृतिक राजस्थान : सं. रतनशाह, पृ. 15

स्तुति, स्तवन, स्तोत्र सज्झाय, वीनती, गीत, नमस्कार आदि नामों से उपलब्ध है।

इससे प्रकट होता है कि जैन कवियों ने चरित, फागु रास आदि अनेक शैलियों एवं अनेक काव्य रूपों को अपनाया। इनमें 'रास' अधिक प्रभावशाली रचना-शैली है इसमें जैन तीर्थंकरो के जीवन-चरित को जैन-आदर्श के अनुरूप 'रास' नाम से पद्यबद्ध किया गया है। राजस्थानी का आरम्भ काल राजस्थानी और गुजराती के सम्मिलित स्वरूप का काल है, यही कारण है कि इन जैन कवियों के काव्य में गुजराती का प्रभाव भी दिखाई देता है। राजस्थानी भाषा के उद्भव और विकास के लिए जैन-साहित्य का आधार एक महत्त्वपूर्ण देन के रूप में माना जायेगा।

जैन-साहित्य की प्रमुख कृतियों का संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है—

भरतेश्वर-बाहुबलि घोर—प्रस्तुत कृति वज्रसेन सूरि द्वारा लिखी गई है। इसका रचना काल संवत् 1125 है और यह राजस्थानी की प्राचीनतम रचना है जो मारू-गुर्जर भाषा में लिखी गई है। 48 छंदों के इस छोटे से काव्य में भरत और बाहुबलि के युद्ध का वर्णन किया है। इसमें वीर और शान्त रस का वर्णन मिलता है।

भरतेश्वर बाहुबलि रास—इस ग्रंथ की रचना संवत् 1241 में शालि भद्र-सूरि ने की थी। यह जैन साहित्य की रास परम्परा का प्रथम ग्रंथ है। इस ग्रंथ में भरतेश्वर और बाहुबलि का चरित-वर्णन है। इन दोनों चरित नायकों को लेकर प्राकृत और अपभ्रंश मे भी कई काव्य लिखे गये हैं। इस काव्य में जो कथा मिलती है उसके अनुसार भरतेश्वर और बाहुबलि अयोध्यावासी ऋषभ जिनेश्वर के यहाँ सुनन्दा और सुमंगला से उत्पन्न हुए थे। भरत आयु में बड़े थे अतः उन्हें अयोध्या का राज्य दिया गया तो बाहुबलि को तक्षशिला का। कवि ने प्रस्तुत कृति में दोनों पराक्रमी वीरों के शौर्य और युद्ध का वर्णन किया है तथा हिंसा और वीरता के पश्चात् विरक्ति और मोक्ष के भाव का प्रतिपादन करना उसका मुख्य लक्ष्य रहा है। 'भरत-बाहुबलि रास' देशी छंदों और राग-रागनियों मे लिखित सुन्दर खंड-काव्य है। प्रो० नरोत्तमदास स्वामी के शब्दों में शालिभद्र सूरि राजस्थानी का सबसे महत्त्वपूर्ण कवि है।[1] इस ग्रंथ की भाषा में नाटकीयता, उक्ति-वैचित्र्य एवं अनुप्रासों की छटा है। सेना-वर्णन, दिग्विजय-वर्णन, हाथी, घोड़ो और सैनिकों के अनेक वर्णन अतिशयोक्तिपूर्ण हैं। इस ग्रंथ की कविता का एक उदाहरण यहां प्रस्तुत है—

अहि उगमि पूरव दिसिहिं, पहिलउं चालिय चक्क ।।
धूंजिय धरयल थरहर एं, चलिय कुचाचल-चक्क ।।

बुद्धिरास—प्रस्तुत कृति भी शालिभद्र सूरि द्वारा लिखित 63 छंदों का संकलन है। इन छंदों में सामान्य लोगों के लिए नीति, उपदेश और ज्ञान की बातें

---

1. राजस्थानी साहित्य : एक परिचय—प्रो० नरोत्तम दास स्वामी, पृ. 25

कही गई हैं। इसकी भाषा सीधी-सरल है। लोक व्यवहार, सामान्य आचरण और सद्गति के मार्ग को पाने के लिए सीधी उक्तियों से परिपूर्ण यह रचना काफी लोकप्रिय हुई है।

जीवदया रास—प्रस्तुत रचना जैन कवि आसगु द्वारा लिखित है। इसका रचना काल संवत् 1257 है जो इस रचना मे दिया हुआ है। इसमें कुल 53 पद्य है। मानव मन में करुणा और दया की भावना उत्पन्न करना तथा जीवों पर दया करना इस रचना का मुख्य लक्ष्य है। इसमें जैन तीर्थों का भी वर्णन किया गया है।

चन्दनबाला रास—यह पैंतीस छंदों का लघु खंडकाव्य है। इसके रचनाकार भी आसगु है। इसकी कथानायिका जैन परम्परा में प्रसिद्ध सतियों में से एक—चंदनबाला है जो चम्पानगरी के राजा दधिवाहन की पुत्री है। कहते हैं कि एक बार कौशाम्बी के राजा शतानीक ने चम्पानगरी पर आक्रमण किया जिसमें शतानीक का सेनापति चदनबाला का अपहरण करके ले गया और उसे एक सेठ को बेच दिया। सेठ ने चदनबाला को अनेक कष्ट दिये लेकिन चदनबाला अपने सतीत्व पर अटल रही। अंत में महावीर से दीक्षा लेकर मोक्ष को प्राप्त हुई। भाव-सौन्दर्य की दृष्टि से यह मार्मिक एवं करुण रचना है।

जम्बू स्वामी रास—प्रस्तुत रचना महेन्द्र सूरि के शिष्य धर्म द्वारा संवत् 1266 में लिखी गई। इसमें सुप्रसिद्ध जम्बू स्वामी की कथा को पद्यबद्ध किया है। इसमें कुल 41 पद्य हैं। पूरी कथा मार्मिक एवं उपदेशमूलक है।

नेमिनाथ बारहमासा और आबूरास—ये दोनों रचनाएँ पाल्हण कवि द्वारा लिखी हुई हैं। नेमिनाथ बारहमासा में 15 पद्य हैं और आबूरास में 51 पद्य। इन रचनाओं का रचना-काल वि. सं. 1289 है। जम्बू स्वामी की भांति जैन काव्य में नेमिनाथ और राजमती का प्रेम प्रसग भी काफी प्रिय विषय रहा है। नेमिनाथ 23वें तीर्थंकर थे तथा महाराजा समुद्र विजय के पुत्र थे उनका विवाह उग्रसेन की बेटी राजमती के साथ तय हुआ था। कहते है कि जब नेमिनाथ ने शादी से पूर्व बारात के भोजन के लिए एकत्र पशुओं की करुण-पुकार सुनी तो उनका हृदय द्रवित होगया और वे संसार त्याग कर तपस्या के लिए गिरनार चले गये। बाद मे राजमती को जब इस घटना का पता लगा तो उसके दिल को ठेस लगी और उसने नेमिनाथ का अनुसरण करते हुए दीक्षा ग्रहण की। नेमिनाथ बारहमासा मारू-गुर्जर कविता का पहला बारहमासा है।

'आबूरास' में मंत्री विमल और वस्तुपाल तेजपाल द्वारा आबू पर्वत पर बनाये गए जैन-मंदिरों का उल्लेख है।

शान्तिनाथ देवरास—लक्ष्मी तिलक ने संवत् 1313 में 'शान्तिनाथ देव रास' की रचना की थी। इस रचना मे जैनियों के 16 वें तीर्थंकर शान्तिनाथ का जीवन

प्रस्तुत किया गया है। जिनपति सूरि ने सं. 1201 में मेड़ गाँव में तथा जिनेश्वर सूरि ने सं. 1256 में जालोर में तीर्थंकर शान्तिनाथ की प्रतिमाएँ स्थापित की थी ग्रतः इस रचना में इनका वर्णन किया गया है। इस रचना का ऐतिहासिक महत्त्व भी है।

रेवंतगिरि रास—यह विजयसेन सूरि की काव्य कृति है। इसकी रचना 1231 ई० के लगभग हुई थी। इसमें तीर्थंकर नेमिनाथ की प्रतिमा तथा रेवंतगिरि तीर्थ का वर्णन है। भावपक्ष और कलापक्ष की दृष्टि से यह सुन्दर काव्य है। इसमें प्रकृति का मनोरम चित्रण मिलता है।

जैन साहित्य की अन्य रचनाओं में अभयतिलक गणी का "महावीर रास" (वि. सं. 1307) विनयचन्द्र का 'नेमिनाथ चउपई' (वि. सं. 1325) सोममूर्ति की चार छोटी रचनाएँ—'जिनेश्वर सूरि विवाह वर्णन रास,' 'जिन प्रबोध सूरि चर्चरी', 'गुरावली रेलुआ' तथा 'जिन प्रबोध सूरि बोलिका' (वि. सं. 1331) उदयधर्म का 'उवएसमाल कहाणय छप्पय' (81 छप्पय) रल्ह अथवा राजसिंह का 'जिणदत्त चरित' (वि. सं. 1354) मुनि राजतिलक का 'शालिभद्र रास' जिनप्रभ सूरि का 'पद्मावती चौपई' (वि. सं. 1385) जिनपद्म सूरि का 'स्थूलिभद्र फाग' (वि. सं. 1390) पूर्णिमागच्छ के शालिभद्र सूरि का 'पंच पाडव चरित रास' (वि. सं. 1410) उपाध्याय विनयप्रभ का 'गौतम स्वामी रास (वि. सं. 1412) जयशेखर सूरि का त्रिभुवन दीपक प्रबंध', 'नेमिनाथ फागु' और 'अरबुदाचल बीनती' (वि. सं. 1462) तथा हीरानंद सूरि का 'वस्तुपाल तेजपाल' (वि. सं. 1485) प्रमुख हैं। अन्य कवियों में राजशेखर सूरि, महोपाध्याय जयसागर, देपाल आदि उल्लेखनीय हैं। इससे प्रकट होता है कि राजस्थानी के आरम्भ काल में सैकड़ो जैन कवियों ने अपनी रचनाएँ प्रस्तुत की।

लौकिक साहित्य

राजस्थानी साहित्य के आरम्भ काल में लौकिक साहित्य भी उपलब्ध होता है वैसे तो अनेक जैन ग्रंथों एवं हेमचन्द्र के अपभ्रंश व्याकरण में भी प्रेम, शृंगार, विरह, वीरता आदि से सम्बन्धित अनेक दोहे मिलते हैं। इनमें कई दोहे तो आज भी किंचित परिवर्तित रूप में लोक प्रचलित हैं। लौकिक काव्य में उपलब्ध होने वाली रचनाओं का परिचय इस प्रकार है—

बीसलदेवरासो—इस ग्रंथ की रचना नरपति नाल्ह कवि ने वि. सं. 1212 में की थी। इस ग्रंथ में इसका रचना-काल इस प्रकार दिया गया है—

बारह सैं बहोत्तरां हां मझारि। जेठ वदी नवमी बुधिवार।

इस पंक्ति का अर्थ कुछ विद्वानों ने 1272 भी लगाया है लेकिन अधिकांश विद्वान इसका रचना काल सं. 1212 और नाल्ह को बीसलदेव चतुर्थ का

समकालीन मानते है । बीसलदेव रासो के रचनाकार नरपति नाल्ह के सम्बन्ध में कोई प्रामाणिक सामग्री उपलब्ध नहीं होती है ।

डॉ० माताप्रसाद गुप्त ने 'बीसलदेवरासो' के 128 छंदों का सम्पादन किया है [1] और इसे ही मूल पाठ माना है । डॉ० मोतीलाल मेनारिया के अनुसार इसमें चार खंड हैं सब मिलाकर 216 छदों में ग्रंथ समाप्त हुआ है । इसकी भाषा गुजराती-राजस्थानी का मिश्रण है ।[2] बीसलदेव रासो विप्रलंभ शृंगार का श्रेष्ठ काव्य है तथा इसकी कथा सरस शैली में प्रस्तुत की गई है । अजमेर के चौहान राजा बीसलदेव का भोज परमार की पुत्री राजमती के साथ विवाह होता है लेकिन राजमती की व्यंग्य एवं तीखी बातो से नाराज होकर बीसलदेव उड़ीसा चला जाता है इधर बारह वर्ष तक राजमती राजा के वियोग मे दुःखी हो जाती है तथा अपने कहे व्यंग्य वचनों पर पछताने लगती है फिर वह एक पण्डित के द्वारा सन्देश भेजती है और राजा लौट आता है । बीसलदेव रासो में प्रेम के निश्छल स्वरूप की अभिव्यक्ति के साथ-साथ शृंगार के वियोग और संयोग पक्षों का अत्यन्त मार्मिक रूप मे चित्रण किया गया है । इसमें 'मेघदूत' और 'सन्देशरासक' की सन्देश परम्परा भी मिलती है । काव्य में सामन्ती जीवन के प्रति आक्रोश तो नारी सुलभ भावनाओं की विवशता और लाचारी का मार्मिक वर्णन मिलता है । राजमती की व्यंग्यमयी वाणी किसी भी कठोर हृदय को द्रवित करने में प्रभावी है । राजस्थान की प्रकृति का रमणीय चित्र बीसलदेव रासो में है । विरह की विभिन्न दशाओं में प्रकृति वर्णन सहायक हुआ है ।

बीसलदेव रासो की भाषा सरल और बोलचाल की है इससे प्रतीत होता है कि इसका रचनाकार अधिक पढा लिखा नहीं था । बीसलदेव रासो की कविता का नमूना इस प्रकार है—

> प्रीय तो चालियो कातिग मास, सूना मन्दिर घर कविलास ।
> सूना चउरा चोखण्डी । नयंण गमायो पथि सरि जाई ।।
> भूख नहीं श्रीस उछली । उणी-घड़ी नीद कहा थी होई ।
> आघण कर दिन छोटा होई । सषी ! संदेशो मोकलोऊ कोई ।।

हंसावली—असाइत ने वि. सं. 1427 में 'हंसावली' नाम से एक प्रेम काव्य लिखा । इसमें मुख्य रूप से चौपाई छंद का ही प्रयोग हुआ है लेकिन बीच-बीच में कहीं-कहीं दोहे भी प्रयुक्त हुए हैं । रचना सरस और सरल है ।

हंसावली का रचनाकार असाइत सिद्धपुर में पैदा हुआ था तथा जाति से औदिच्य ब्राह्मण था । हंसावली काव्य का उदाहरण इस प्रकार है—

---

1. हिन्दी साहित्य का इतिहास : डॉ. नगेन्द्र, पृ. 86 ।
2. राजस्थानी भाषा और साहित्य : डॉ. मोतीलाल मेनारिया, पृ. 89 ।

किलकिलतो बन विचरती धर बीसास।
सचि सामी साहस कीउ, हूँ एकली निराम॥
भगि असाइत भव अंतरि, समरि सामणी कंत।
हंमाउलि धरती ढली पीउ पीउ मुखि भणंति॥

वसन्त विलास—लौकिक काव्य की श्रेष्ठ कृति के रूप में 'वसन्त विलास' जैसी साहित्यिक रचना इस काल में मिलती है। डॉ. माताप्रसाद गुप्त ने इस रचना के महत्त्व को स्वीकारते हुए लिखा है कि यह एक अत्यधिक सरस साहित्यिक कृति है और आधुनिक भारतीय आर्य भाषा साहित्य के आदिकाल के इतिहास में बेजोड़ है।[1] डॉ. हीरालाल माहेश्वरी के अनुसार इस कृति का रचना काल लगभग वि. सं. 1350 के आसपास होना चाहिए।[2]

इस कृति के रचयिता का पता नहीं चला है। इसमें चौरासी दोहे हैं जिनमें वसन्त और स्त्रियों पर पड़ने वाले उसके विलासपूर्ण प्रभाव का सुन्दर चित्रण किया गया है।

इस काव्य में प्रकृति और नारी के मदोन्मत्त स्वरूप का मार्मिक चित्रण है। इस काव्य की सरसता सूर के शृंगार वर्णन और रीतिकाल की शृंगारिकता की परम्परा को हमारे सामने प्रस्तुत करती है। "इस कृति में आदिकाल के जन-जीवन का वह सरस पक्ष उभरता है जिसे आचार्य रामचन्द्र शुक्ल शायद तलवारों की झनझनाहट के आधिक्य के कारण नहीं सुन पाये थे। स्त्री-पुरुष-प्रकृति—तीनों में अजस्र बहती मदोन्मत्ता का इस काव्य में जैसा चित्रण मिलता है[2] वैसा रीतिकालीन हिन्दी-कवि भी नहीं कर सके।[3] एक उदाहरण देखिए—

इणि परि कोइलि कूजइ, पूजइ युवति मणोर।
विधुर वियोगिनि धूजइ, कूजइ मयण किसोर॥

लौकिक काव्य के अन्तर्गत जो अन्य काव्य मिलते हैं उनमें एक है—शृंगार शत। इसमें 105 छंद हैं और इसका रचना काल लगभग वि. सं. 1350 है।

विजयभद्र द्वारा लिखित 'हंसराज-बच्छराज चौपई' रचना उपलब्ध होती है जिसका रचनाकाल सं. 1354 है।

संवत् 1409 में भीम ने 'सद्यवत्स वीर प्रबंध' की रचना की जो 730 छंदों में लिखा हुआ है तथा यह आख्यान राजस्थान, गुजरात और इसके आसपास के क्षेत्रों में काफी लोक प्रचलित है।

---

1. वसन्त विलास और उसकी भाषा : डॉ. माताप्रसाद गुप्त, पृ. 9
2. History of Rajasthan Literature : Dr. H. L. Maheshwari, P. 34.
3. हिन्दी साहित्य का इतिहास : डॉ. नगेन्द्र, पृ. 93

माणक्य सुन्दर सूरि ने 'मलय सुन्दरी कथा' नाम से प्रेमाख्यान लिखा है जिसका रचनाकाल सं. 1421 है। अन्य लौकिक काव्यों में हीरानंद सूरि रचित विद्याविलास पवाड़उ (वि. सं. 1428) तथा हीर भाट कृत 'मानवती विनयवती प्रबन्ध'। घाघ और भड्डरी की मौसम सम्बन्धी कहावतें भी प्रायः इसी काल की रचना है।

चारण साहित्य—चारण साहित्य से तात्पर्य चारण शैली में लिखित साहित्य से है। यह साहित्य चारण कवियों के अलावा ब्राह्मण, राजपूत, ढाढी, ढोली, राव, सेवक आदि जातियों के कवियों द्वारा भी लिखा गया है। चारण जाति कविता भी करती थी और अवसर आने पर युद्ध भूमि में जूझती भी थी। राजस्थान में चारणों का राजपूत जाति के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध रहा है। चारणों ने जहाँ एक ओर राजपूतों की उज्ज्वल कीर्ति गाथाओं का गुणगान किया है, वहीं मौका पड़ने पर अपने आश्रयदाता के साथ युद्ध भी लड़े है। यही कारण है कि चारण साहित्य में वीररस का सजीव और साकार रूप उत्पन्न हुआ है। चारण साहित्य काफी समुन्नत है और देश के सभी विद्वानों ने इसकी प्रशंसा की है। इस साहित्य में वीर और शृंगार रस की प्रधानता है इसके अलावा अन्य रसों का भी सुन्दर परिपाक हुआ है। चारणों ने उच्चकोटि के भक्त भी हुए है। चारणों का सम्पूर्ण साहित्य ऐतिहासिक सन्दर्भों की उपज है। डॉ. हीरालाल माहेश्वरी के अनुसार 'ऐतिहासिक साहित्य का बाहुल्य चारण-साहित्य की एक प्रमुख विशेषता है।'[1] चारण-साहित्य प्रायः डिंगल भाषा में लिखा गया है। प्रो० नरोत्तमदास स्वामी के शब्दों में चारणी शैली का साहित्य वीर रसात्मक और ऐतिहासिक है। इसकी भाषा डिंगल कहलाती है।[2] डॉ. हीरालाल माहेश्वरी ने चारण-साहित्य को मुख्य रूप से दो भागों में बाटा है—1. ऐतिहासिक-वीररसात्मक तथा 2. पौराणिक-धार्मिक।

राजस्थानी साहित्य के आरम्भ काल की चारण साहित्य की रचनाएँ निम्नलिखित हैं—

रणमल्ल छंद—इसका रचयिता श्रीधर व्यास है जो इडर के राजा रणमल राठौड़ का समकालीन था। इस ग्रंथ का रचना काल सं. 1457 है। 'रणमल छंद' में 70 पद्य हैं तथा इसमें पाटण के सूबेदार जफरखां और रणमल की लड़ाई का वर्णन है। इसकी भाषा ओजस्वी, अलंकारमयी एवं सजीव है। ऐतिहासिक दृष्टि से इस काव्य का अपना महत्त्व है। वीर रस से परिपूर्ण इस लघु काव्य कृति का एक उदाहरण देखिए—

---

1. राजस्थानी साहित्य : डॉ. हीरालाल माहेश्वरी, पृ. 70
2. राजस्थानी साहित्य : एक परिचय प्रो. नरोत्तमदास स्वामी, पृ. 25

दमदमकार दमाय दमरुह, डमडम डमडम ढोल डमक्कई ।
तरवर वेस पहट्टइ, तरतर तुरक पड्ड तलहट्टि ।

श्रीधर व्यास इस युग का एक महत्त्वपूर्ण कवि था उसने ऐतिहासिक वीर रसात्मक काव्य के साथ-साथ धार्मिक एवं पौराणिक काव्य की भी रचना की । 'रणमल छंद' के अलावा श्रीधर व्यास का अन्य काव्य कृतियों में 'सप्तमती रा छंद' (120 छंद) 'कवित्त भागवत' (127 छंद) आदि हैं ।

वीरमायण—वीरमायण का रचयिता बादर या बहादर जाति का मुसलमान ढाढी था । स्वयं कवि ने एक स्थल पर लिखा है—

बादर ढाढी बोलियो निसाणी गला ।

पं. रामकर्ण आसोपा ने इसका रचयिता रामचन्द्र माना है जो कि उचित नहीं है । इस ग्रंथ के रचनाकाल के सम्बन्ध में डॉ. मोतीलाल मेनारिया ने दो मत रखे हैं । एक तो वे इसका रचना काल सं 1440 मानते हुए, कवि को राव वीरमजी का आश्रित बताते हैं दूसरी ओर वे इसे अठारहवीं शताब्दी के मध्य की रचना मानते हैं ।[1] प्रो. नरोत्तमदास स्वामी इसे चारणी शैली की प्रारम्भिक रचनाओं में स्वीकारते हैं ।[2] डॉ. माहेश्वरी इसकी रचना संवत् 1460 के बाद संवत् 1500 के आसपास मानते हैं ।[3] इस ग्रंथ में कुल 285 पद्य है तथा इसमें दला जोईया और वीरमजी के बीच होने वाले संघर्ष का वर्णन किया गया है । इसमें निसाणी छंद का प्रयोग हुआ है । वीरमायण वीर रस की उत्कृष्ट एवं ओजस्वी भाषा से परिपूर्ण रचना है । एक उदाहरण प्रस्तुत है—

झटका झड़गा बगतरी झटका कर झाड़ै
पतसाहां दल पाधरै राठोड़ रमाड़ै
घोड़ा आगल गैब का बाजा बजवाड़ै
तेग वहे मुतां तणी राठोड़-अवाड़ै

इतिहास की दृष्टि से यह ग्रंथ महत्त्वपूर्ण है क्योंकि इसमें इतिहास की अत्यन्त मूल्यवान सामग्री सुरक्षित है । इस ग्रंथ में कवि ने अपने चरित नायक का यथातथ्य वर्णन किया है, उसमें कहीं किसी प्रकार की अतिशयोक्ति प्रतीत नहीं होती । युद्ध वर्णन में जैसा प्रवाह और सजीवता है वैसी अन्यत्र दुर्लभ है ।

अचलदास खींची री वचनिका—इसका रचयिता सिवदास गाडण है । इसने अपने एवं इस रचना के निर्माण-काल के बारे में कुछ भी नहीं लिखा है । यह तुकान्त गद्य-पद्य मिश्रित छोटी सी रचना है । इसमें दोहा, सोरठा, छप्पय और कुंडलियों का प्रयोग हुआ है । गद्य-समुच्चय और छंदों की संख्या 120 है ।

---

1. डिंगल में वीर रस : डॉ. मोतीलाल मेनारिया, पृ. 226
2. राजस्थानी साहित्य : एक परिचय—प्रो. नरोत्तमदास स्वामी, पृ. 29
3. राजस्थानी साहित्य : डॉ. माहेश्वरी, पृ. 76

इस काव्य में गागरोनगढ के राजा अचलदास खीची और मांडू के बादशाह होसंगगोरी के युद्ध का तथा राजपूत स्त्रियों के जौहर का बड़ा सजीव वर्णन है। इसके रचनाकाल के सम्बन्ध मे विद्वानों में मतभेद है। डॉ. हीरालाल माहेश्वरी के मतानुसार 'युद्ध' का समय सं. 1490 तथा इसका रचना काल संवत् 1500 के आसपास है।[1] यद्यपि वचनिका वीर रस प्रधान रचना है लेकिन एक स्थल पर करुण रस का उल्लेख भी मिलता है। इस ग्रंथ में लोक प्रचलित 'वात' शैली के दर्शन होते हैं बहुत संभव है कि जन-साधारण की भावनाओं को ध्यान मे रखकर ही वचनिका की रचना की हो। ऐतिहासिक तथ्यो की दृष्टि से तो यह ग्रंथ उतना महत्त्वपूर्ण नहीं लेकिन भाषा और काव्य की दृष्टि से निश्चित रूप से उल्लेखनीय माना जायेगा। एक उदाहरण देखिए—

> बिहुं छेहि बांणावली। सरपुंडिग सललो।
> ग्रणी ग्रणी भतुली। पग पगां पली।
> रुधिर धर रलतली। बहु नाचै कंमुद महाबली।
> भालूके आंतावली। ग्रालय अचलेसरि अडयां।

कवि ने इस काव्य मे युद्ध का आंखो देखा वर्णन किया है अतः उसमें सजीवता और यथार्थ वर्णन है। चारण साहित्य की श्रेष्ठ कृतियों में 'वचनिका' की गणना की जाती है। वचनिका का गद्य भी काफी सुन्दर है तथा उसमे 'वात' शैली का सहज प्रवाह एवं ओज है।

इसी भांति जाखो मणिहार की रचना 'हरिचंद पुराण' (वि. सं. 1453) भी चारण साहित्य की अच्छी रचना है।

आरम्भिक काल की उपलब्धियां—राजस्थानी साहित्य के इतिहास का यह काल साहित्यिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण कहा जायेगा। इस काल के साहित्य पर विचार करने से पता चलता है कि इस काल में चारणी शैली, लौकिक शैली और जैन शैली मे साहित्य लिखा गया। जैन शैली का साहित्य विविधता और प्रचुरता को लिए हुए हैं। राजस्थानी साहित्य के आरम्भिक काल का पता जैन साहित्य से ही चलता है। इन जैन कवियों ने जहां साहित्य का निर्माण किया, वहीं जैनेतर कृतियों को संगृहीत करके सुरक्षित भी रखा। राजस्थानी साहित्य के संरक्षण में जैन विद्वानों की सेवा ऐतिहासिक महत्त्व की मानी जायेगी। प्रो. नरोत्तमदास स्वामी ने लिखा है कि जैन विद्वानों ने साहित्य की रचना ही नहीं की किन्तु साहित्य की रक्षा करने का महत्त्वपूर्ण कार्य भी किया। जैन और जैनेतर सभी प्रकार के साहित्य को उन्होने संगृहीत किया और उसे लुप्त होने से बचाया। सैंकडो जैनेतर ग्रंथ जो अन्यत्र अलभ्य हैं, जैन भंडारों में देखे जा सकते है।[2]

---

1. राजस्थानी भाषा और साहित्य : डॉ. माहेश्वरी, पृ. 83
2. राजस्थानी साहित्य : एक परिचय—प्रो. नरोत्तमदास स्वामी, पृ. 27

भाषा की दृष्टि से देखा जाय तो इस साहित्य का भाषा राजस्थानी-गुजराती का मिश्रित रूप है तथा कई रचनाओं पर अपभ्रंश भाषा का प्रभाव भी दिखाई देता है लेकिन ऐसा प्रतीत होता है कि प्रारम्भिक काल में ही राजस्थानी धीरे-धीरे साहित्य का माध्यम बनने की ओर अग्रसर हो गई थी जो आगे चलकर प्रारम्भिक काल के पश्चात् गुजराती से अलग हो जाती है। भाषा की दृष्टि से भी राजस्थानी के कई रूप विकसित हो रहे थे। चारणी साहित्य में उसका साहित्यिक रूप डिंगल के रूप में तो जैन साहित्य और लौकिक साहित्य के रूप में उसका सीधा, सरल और सम्प्रेषणीय रूप।

काव्य और शिल्प की दृष्टि से भी राजस्थानी का प्रारम्भिक काल काफी महत्त्वपूर्ण है इसके साथ ही राजस्थानी साहित्य की कुछ परम्पराओं का स्रोत भी इस काल के साहित्य में दृष्टिगोचर होता है। जैन साहित्य में धार्मिक भावना, चरित नायकों के प्रेरणादायी आख्यान तथा चरित्र निर्माण पर बल दिया गया है तो चारणी साहित्य में वीर रस और लौकिक साहित्य में शृंगार रस का सुन्दर परिपाक हुआ है। शान्त, वीर और शृंगार—ये तीन इस काल के साहित्य के प्रधान रस हैं और देखा जाय तो आगे के राजस्थानी साहित्य में भी इन तीनों ही रसों से सम्बन्धित जीवन क्षेत्रों को लिया गया है। इस साहित्य में एक ओर जहाँ जीवन से विमुख होकर मोक्ष प्राप्त करने की उत्कट अभिलाषा दिखाई देती है तो दूसरी तरफ युद्धोन्माद में मस्त वीर योद्धाओं की युद्ध ललकार; तो फिर कहीं-कहीं प्रेम और शृंगार की मादकता में डूबे प्रेमियों की प्रेमानुभूतियों का सच्चा स्वरूप दिखाई देता है। धर्म, प्रेम, शृंगार और वीर भावना प्रारम्भिक साहित्य का कथ्य कहा जा सकता है।

शिल्प की दृष्टि से देखा जाय तो राजस्थानी साहित्य के इतिहास का यह काल कई प्रकार की विविधता लिए हुए है। जैन साहित्य में जैन कवियों ने काव्य के विभिन्न रूपों को अपनाया। जैन काव्य के इन काव्य रूपों का प्रभाव परवर्ती काव्य पर भी दिखाई देता है। जैन कवियों ने 'रास' को एक प्रभावशाली रचना-शैली के रूप में अपनाया और जैन-तीर्थंकरों के जीवन-चरित को जैन-आदर्शों के आवरण में 'रास' नाम से प्रस्तुत किया गया। लौकिक काव्यों में 'वीसलदेव रास' की रचना हुई तो फिर इससे भिन्न विषय-भूमि को लेकर चारण-साहित्य में रासो ग्रंथ लिखे गये। इस साहित्य में प्रकृति के भी अनेक रूप मिलते हैं। जैन काव्यों में काव्य रूपों की विविधता में रास, चोपई, ढाल, पवाड़ा, संधि, चर्चरी, प्रबंध, चरित्र, सम्बन्ध, आख्यानक तथा कथा आदि हैं। 'वचनिका' भी चारण साहित्य का एक अलग काव्य रूप है जो गद्य-पद्य मिश्रित है। इस काव्य युग ने मध्ययुग में अनेक चारण कवियों को इस विधा को अपनाने के लिए प्रेरित किया और कई वचनिकाएँ लिखी गईं।

आरम्भ काल के साहित्य में छंद प्रयोग की विविधता भी दिखाई देती है। दोहा, छप्पय, तोटक, तोमर, चौपाई आदि छंदों का प्रयोग चारण साहित्य में खूब हुआ है। दोहा छंद तो आरम्भ से ही राजस्थानी का प्रिय छंद रहा है। छद के अतिरिक्त कथा कहने की भी कुछ शिल्प पद्धतियां इस काल के साहित्य में उपलब्ध होती है। 'अचलदास खीची री वचनिका' एक ऐसा काव्य है जिसमें गद्य और पद्य दोनों दिखाई देते हैं। इस काव्य में कथा-वर्णन की अपनी विशिष्ट शैली है। 'वचनिका' को चम्पू काव्य की संज्ञा दी जा सकती है और यह आरम्भ काल की एक उल्लेखनीय कृति है। इससे प्रकट होता है कि राजस्थानी में गद्य का उद्‌भव भी 14वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में हो गया था।

शैली के अन्तर्गत जैन कवियों ने लोकगीतों की धुनों पर भी अपने काव्यों का निर्माण किया है। आरम्भ में तर्ज के रूप में लोकगीत की प्रथम पंक्ति दे दी और फिर काव्य रचना की है। ऐतिहासिक दृष्टि से इन लोकगीतपरक रचनाओं का काफी महत्व है और इनके स्वतन्त्र अध्ययन से कई नवीन तथ्य प्रकाश में आ सकते हैं। इसी भांति जैन कवियों ने लोक प्रचलित और परम्परागत कथाओं को भी अपनी रचनाओं में सुरक्षित रखने का प्रयत्न किया। कतिपय काव्य-रूढ़ियों का प्रयोग भी जैन काव्य मे दिखाई देता है।

इस दृष्टि से देखें तो राजस्थानी के आरम्भ काल के साहित्य में जैन कवियों का योगदान सबसे महत्वपूर्ण माना जायेगा—कथ्य और शिल्प की विविधता के कारण। धर्म भावना का सात्विक रूप, वीर रसात्मक कविता का ओजस्वी स्वर, युद्धों का सजीव वर्णन, प्रेम की उदात्त व्यंजना, गद्य का आविर्भाव आदि आरम्भ काल की कुछ प्रमुख विशेषताएँ कही जा सकती हैं। रचनात्मक विशालता और भाषागत प्रौढ़ता भी इस काल के विशेष लक्षण कहे जायेंगे।

अध्याय-3

मध्यकाल : (सन् 1450 से 1850 ई.)

आरम्भ काल मे इस स्थिति पर विचार कर चुके हैं कि साहित्य अंततः अपने परिवेश की अभिव्यक्ति होता है। राजस्थानी का रचनाकार अपनी परिस्थितियों में जिस युग-बोध मे जुड़ा हुआ था, उसकी ईमानदार अभिव्यक्ति उसकी रचनाओं में प्रकट हुई है। राजस्थानी साहित्य के मध्यकाल पर विचार करते हुए, हमे पुनः एक बार राजनीतिक और धार्मिक परिवेश पर विचार कर लेना चाहिए।

राजनीतिक परिवेश—मध्यकाल के राजस्थान के इतिहास पर दृष्टिपात करें तो प्रतीत होता है कि चौहानो के पतन के बाद राजस्थान मे कुछ नये शासकों का उदय, दिल्ली मे मुगल साम्राज्य की स्थापना, मुगलों का अत्याचार और अनाचार ब्रिटिश राज्य की स्थापना और अंग्रेजों के खिलाफ बगावत का भाव आदि मुख्य-मुख्य स्थितियां दिखाई देती हैं।

राजस्थान में राजपूत शासको ने लम्बे समय तक तुर्कों के साथ संघर्ष किया लेकिन वे उनके बढ़ते हुए प्रभाव को रोक नही सके और अन्त मे पराजित हो गये। मेवाड में राजनीतिक स्थिति काफी गंभीर रूप धारण करती रही। कुंभा की हत्या के बाद उदयसिंह मेवाड के राजसिंहासन पर बैठा। उस समय मेवाडी सामन्तों में फूट थी फलतः ईडर से रायमल ने चित्तौड पर आक्रमण किया और वह सम्पूर्ण मेवाड़ का राजा बन गया। रायमल की मृत्यु के बाद महाराणा सांगा (सन् 1509) सिंहासन पर बैठा। इतिहासकारो ने लिखा है कि सोलहवीं सदी के आरम्भ मे उत्तरी भारत की राजनीतिक स्थिति एक उबलते हुए लावे की तरह थी। दिल्ली मे उस समय सिकन्दर लोदी का शासन था। उसकी मृत्यु के बाद इब्राहीम लोदी सुल्तान बना। उसने चित्तौड पर आक्रमण किया लेकिन सांगा के हाथो पराजित होना पड़ा। इधर गुजरात और मेवाड के बीच बराबर तनाव बना रहा। इस समय मारवाड़ के राठौड आमेर के कच्छवाह तथा हाड़ौती के चौहान अपनी-अपनी सीमाओं मे अपने राज्य का विस्तार करने मे लगे हुए थे। सन् 1508 मे राव गागा मारवाड़ के सिंहासन पर बैठा तथा उसने राठौड़ो की अन्य शाखाओ मेडता, बीकानेर आदि को अपने प्रभुत्व में लेने की योजना बनाई। फलतः बीकानेर और मारवाड के राठौड़ों

मे संघर्ष प्रारम्भ हो गया। सन् 1520 में आमेर का शासक पृथ्वीराज बना और उसने भी अपने क्षेत्र को बढ़ाना शुरू किया। इधर राणा सांगा और बाबर के बीच खानवा में युद्ध हुआ जिसमें सांगा पराजित हो गया।

रणमल का बड़ा लड़का राव जोधा था जिसने सन् 1459 मे जोधपुर बसाया और उसे मारवाड़ की राजधानी बनाया। सन् 1489 में राव जोधा की मृत्यु हो गई फिर सातल, सूजा और गांगा शासक बने। गांगा की मृत्यु के बाद सन 1531 में मालदेव मारवाड़ का शासक बना। मालदेव ने विस्तारवादी नीति को अपनाया। उसने मेड़ता, अजमेर और बीकानेर पर भी अधिकार जमाया। सन् 1562 में मालदेव का देहान्त हो गया। मालदेव ने अपने सैनिक पराक्रम और कूटनीति द्वारा एक विशाल राज्य की स्थापना की। मालदेव की मृत्यु के बाद राजस्थान में मुगलों के सैनिक केन्द्र स्थापित हो चुके थे और राजपूत राज्यों के आन्तरिक गृह-कलह ने राज्यों में हस्तक्षेप करने का भी अवसर प्रदान कर दिया था फलतः इस प्रान्त पर पराधीनता की काली छाया मंडराने लगी।

मेवाड़ मे जब महाराणा प्रताप राजगद्दी पर बैठे उस समय चित्तौड़ पर मुगलों का अधिकार था तथा जोधपुर, बीकानेर, जैसलमेर के शासकों ने अकबर की अधीनता स्वीकार करली थी। जून 1576 में राणा प्रताप और अकबर की सेना के बीच हल्दीघाटी में इतिहास प्रसिद्ध युद्ध हुआ। दुरसा आढा ने प्रताप के शौर्य और स्वाभिमान को अपने ओजस्वी दोहों मे अभिव्यक्त किया है।

औरंगजेब की मृत्यु के बाद मुगल साम्राज्य पतनोन्मुख हो गया था। मुगलों से वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित करने के साथ ही राजस्थान मे मुगल-राजपूत सहयोग के विचित्र परिणाम भी नजर आने लगे। दुरसा आढा और पृथ्वीराज राठोड़ की 'वेलि क्रिसन रुकमणी' इसी काल की कृतियां है।

18वीं शताब्दी में औरंगजेब की मृत्यु के बाद राजस्थान की राजनीति मे नवोदित मराठा शक्ति ने प्रवेश किया और मराठों ने मालवा, बूंदी, मेवाड़, जोधपुर आदि पर आक्रमण किया और धीरे-धीरे समस्त राजस्थान पर मराठा शक्ति का आधिपत्य हो गया। राजस्थान के राजपूत उस समय राग-रंग मे डूबे हुए कूप-मण्डप बने रहे। 18वीं शती के उत्तरार्द्ध मे मुगलों की केन्द्रीय शक्ति पतनोन्मुख होने के कारण राजस्थान पर नियन्त्रण रखने वाली कोई सर्वोच्च शक्ति नहीं रह गई, फलतः यहां के राजपूत परस्पर लड़ने-झगड़ने लगे। उस समय भारत मे अंग्रेजों की शक्ति का विकास हो रहा था अतः सर्वप्रथम सन् 1781 में जोधपुर के शासक विजयसिंह ने मराठों के विरुद्ध अंग्रेजों से पत्र-व्यवहार किया और फिर तो जयपुर, कोटा आदि के शासको ने भी अंग्रेजों से सहायता प्राप्त करने का आग्रह किया। ब्रिटिश संरक्षण स्वीकार करने के बाद राजपूत नरेशों की बाह्य स्वतन्त्रता खत्म हो गई और राज्यो की स्थिति अत्यन्त दयनीय हो गई। आर्थिक दशा कमजोर होने के कारण अव्यवस्था फैल गई और

सामन्तो के खिलाफ विद्रोह की आग भड़क उठी। सन् 1818 में राजस्थान के सभी राज्यों ने अंग्रेजों की अधीनता स्वीकार करली थी फलतः 1857 में राजस्थान में विप्लव की स्थिति पैदा हो गई।

इस तरह राजनीतिक स्थितियों पर विचार करने से पता चलता है कि मध्यकाल युद्ध, अव्यवस्था, अराजकता और आक्रमणों का काल था। इस काल में मुगल साम्राज्य का पतन हुआ लेकिन ब्रिटिश कम्पनी की स्थापना हुई और मध्यकाल के अंतिम वर्षों मे ब्रिटिश सरकार के खिलाफ भी बगावत का भाव पैदा हो गया। ऐसी स्थिति मे सामाजिक दशा भी अशान्तिपूर्ण थी और आर्थिक स्थिति काफी कमजोर होती जा रही थी। राजपूत शासकों की पारस्परिक फूट और कलह ने जनमानस को काफी परेशान कर दिया था। इस काल का समाज रूढ़िग्रस्त और कई कुप्रथाओं से जकड़ा हुआ था।

मध्यकाल की प्रमुख प्रवृत्तियाँ—मध्यकाल के राजस्थानी साहित्य पर विचा करे तो प्रतीत होता है कि यह काल वर्ण्य-विषयों, काव्य रूपो तथा रचना शैलियों की दृष्टि से विविधता लिए हुए है। इस काल मे जैन साहित्य, लौकिक साहि और चारण साहित्य मे जहाँ अनेक रचनाकार हुए, वही आख्यान काव्य और सं काव्य का निर्माण भी हुआ। चारण साहित्य में वीर, शृंगार और भक्तिभावना का चित्रण मिलता है, तो संत परम्परा मे धार्मिक सद्भाव और ईश्वर के निर्गुण-सगुण स्वरूप का गुणगान भी दिखाई देता है। अपभ्रंश साहित्य की कई विशेषताएं मध्यकाल के साहित्य मे भी प्रकट हुई हैं। राजस्थान में नाथ सम्प्रदाय का प्रभाव आरम्भ से ही रहा है फलतः इस काल में कई ऐसे सम्प्रदाय दिखाई देते हैं जिन पर नाथ सम्प्रदाय का प्रभाव लक्षित होता है। इन सम्प्रदायों ने जीवन मे सदाचार और योग-साधना पद्धति को अपनाने पर बल दिया तो दूसरी तरफ संत साहित्य मे भक्ति-भावना का स्वर मुखरित हुआ। मुसलमानो के आक्रमणों के कारण जनता भयभीत थी फलतः उसमें भजन-कीर्तन और पूजन-अर्चन की भावना बलवती होती गई।

इस काल में आख्यान काव्य भी लिखे गए जिनका उद्देश्य लोकजीवन मे प्रवेश करके लोक चेतना और सांस्कृतिक भावना को सुदृढ़ करना था फलतः इन आख्यान काव्यों मे जिन प्रसंगो को लिया, वे आदर्श और उदात्त भावना से परिपूर्ण भी थे तो उनकी प्रस्तुति साधारण बोलचाल की भाषा में की गई। ऐसी रचनाओं का लोक रुचि की दृष्टि से बड़ा महत्व था।

15वीं शताब्दी में राजस्थानी गुजराती भाषा से अलग अपने स्वतन्त्र रूप में आ जाती है अतः इस काल में राजस्थानी का साहित्यिक रूप और बोलचाल की लोकभाषा वाला रूप भी दिखाई देता है। विभिन्न काव्य-रूपों, काव्य शैलियो और विषयगत विविधता के आधार पर मध्यकाल को राजस्थानी साहित्य का स्वर्णयुग भी कह सकते हैं। वीर, शृंगार और भक्ति की श्रेष्ठ रचनाओं से परिपूर्ण मध्यकाल

का साहित्य मौखिक और लिखित परम्परा में काफी विशाल है। प्रवृतियो के आधार पर मध्यकाल के साहित्य को निम्नलिखित रूप मे विभाजित किया जा सकता है—

1. चारण काव्य
2. आख्यान काव्य
3. संत काव्य
4. लौकिक काव्य
5. जैन काव्य

चारण काव्य—राजस्थानी साहित्य के आरम्भ काल में जो चारण-काव्य उपलब्ध होता है, उसका मूल स्वर वीर रसात्मक है क्योंकि उस समय युद्धमय परिस्थितियां थी। ठीक इसी प्रकार 15वी शताब्दी से लेकर 19वी शताब्दी के उत्तरार्द्ध तक का काल भी युद्ध और आक्रमणों का समय था। राजपूत और मुगलों में बराबर युद्ध हो रहे थे तथा केन्द्रीय मुगल साम्राज्य के पतन का समय भी शुरू हो गया था फलतः ब्रिटिश सत्ता का बढ़ता आधिपत्य और उसके ही विरुद्ध में उभरता विद्रोह का स्वर—इस काल की प्रमुख राजनीतिक स्थिति थी। यही कारण है कि इस काल का साहित्य देश, धर्म और संस्कृति की रक्षा में जूझने वाले वीरों की कीर्ति गाथाओं का यथार्थ रूप है।

चारण काव्य मुख्य रूप से दो धाराओ मे विभाजित किया जा सकता है—
(क) ऐतिहासिक वीररसात्मक काव्य।
(ख) पौराणिक-धार्मिक काव्य।

(क) ऐतिहासिक वीररसात्मक काव्य—इस धारा के अन्तर्गत ऐसे चारण कवियों का काव्य आता है जिन्होंने अपने आश्रयदाताओं के शौर्य और पराक्रम का वर्णन भी किया है तो मौका पड़ने पर स्वयं युद्धभूमि में जाकर जूझे भी है, यही कारण है कि वीर रस का जैसा ओर प्रभावशाली वर्णन चारण काव्य मे मिलता है वैसा अन्यत्र दुर्लभ है। चारण काव्य का वीररसात्मक काव्य जहाँ एक ओर ऐतिहासिक तथ्यों को समेटे हुए है, वहीं वह शिल्पगत विविधता से भी परिपूर्ण है। इस काल में वीर रस की प्रौढ ओर श्रेष्ठ कृतियां दिखाई देती हैं जिनमें प्रबंध काव्य, वेलि, वचनिका, विशिष्ट छंद प्रयोग आदि काव्य रूप हैं।

कालक्रम की दृष्टि से ऐतिहासिक वीररसात्मक काव्य के प्रमुख कवियों का परिचय निम्न प्रकार है—

गाडण पसाइत—मध्य युग के आरम्भिक कवियों में गाडण पसाइत का महत्त्वपूर्ण स्थान है। पसाइत की रचनाओं में 'राव रिणमल रो रूपक' ओर 'गुण जोधायण' प्रमुख हैं। 'राव रिणमल रो रूपक' विविध प्रकार के 71 छंदो मे लिखा काव्य है जिसमें मारवाड़ के राव रणमल के यश एवं कुम्भा की मृत्यु का वर्णन है। 'गुण जोधायण' जोधपुर के संस्थापक राव जोधा की प्रशंसा में लिखा काव्य है।

इसमें कुल 75 छंद हैं। गाडण पसाइत की अन्य फुटकर रचनाओं में 'कवित्त राव रिणमल चूंडे रै वैर में भाटिया नैं मारोया तैं समैरा,' 'कवित राव रिणमल नागौर रै धणी पेरोज नैं मारीया तैं समैरा' और 'कवित्त राणे मोकल मूग्रां री खबर आया रा' प्रमुख हैं।

खिड़िया चानण—अपने समय के प्रतिष्ठित कवियों में खिडिया चानण का नाम उल्लेखनीय है। ये राणा मोकल और राव जोधा के समकालीन थे। कुछ इन्हें बीकानेर के संस्थापक राव बीका के समकालीन मानते हैं। बीकाजी ने इन्हें लाख पसाव भी दिया था। मुक्तक काव्य के रूप में खिड़िया चानण की 'दूहा राव रिणमल रा,' 'दूहा राव रिणधीर रा' आदि रचनाएं उपलब्ध होती हैं। खिड़िया जग्गा ने अपनी 'वचनिका' में भी खिडिया चानण की 'दूहा राव रिणमल रा' रचना का उल्लेख किया है जो खिड़िया चानण की प्रसिद्धि का परिचायक है।

सिंढायच चौभुजा—इनकी गणना भी वीर रसात्मक रचनाएं लिखने वालों में की जाती है। सिंढायच चौभुजा का रचना काल संवत् 1500 के आसपास माना है। इन्होंने भी राव रणमल के बारे में काव्य लिखा था।

पद्नाभ—जालोर के चौहान अखैराज का आश्रित कवि पद्नाभ था। इसने संवत् 1512 मे 'कान्हडदे प्रबंध' की रचना की है। इस काव्य में जालौर के सोनगिरा चौहान कान्हडदे पर जब अलाउद्दीन खिलजी के आक्रमण होते हैं उस समय किस प्रकार कान्हडदे अनेक राजपूत सैनिको के साथ संघर्ष करता हुआ वीरगति को प्राप्त होता है, इसका प्रभावशाली चित्रण किया गया है। 'कान्हड़दे प्रबंध' चार खंडों में विभाजित है और इसमे चौपाई, दोहा, सवैया आदि छंदों का प्रयोग किया गया है। 'कान्हड़दे-प्रबध' सोलहवी शताब्दी के काव्यों में विशिष्ट स्थान रखता है। इस काव्य के सम्पादक प्रो० के. बी. व्यास ने इसकी तुलना पृथ्वीराज रासो से की है। इस काव्य मे तत्कालीन समाजिक, धार्मिक, आर्थिक और भौगोलिक परिस्थितियों का भी यथातथ्य वर्णन हुआ है। साहित्यिक दृष्टि से प्रसाद शैली मे लिखित 'कान्हड़दे प्रबंध' एक सशक्त काव्य कृति है। इसमें पाच लौकिक शैली के गीत दो गद्यांश भी दिये हुए हैं। इसमे कुल 1000 छद है।

भाडउ व्यास—इन्होंने संवत् 1538 मे रणथमोर के प्रसिद्ध हठी एवं चौहान वीर हम्मीरदेव के सम्बन्ध में 'हमीरायण' काव्य की रचना की। इस काव्य में हम्मीरदेव के शौर्य, पराक्रम और शरणागत रक्षा के भाव का सुन्दर चित्रण किया गया है। इसका कथानक भी 'कान्हड़दे प्रबध' से मिलता जुलता है। 321 छंदों मे लिखे इस काव्य में दोहा, गाहा, चौपाई आदि विविध छंदों का प्रयोग हुआ।

वीठू सूजा—वीठू सूजा राव बीका और लूणकरण का समकालीन कवि था। राव जैतसी ने वीठू सूजा को जागीर के रूप में एक गाव भी दिया था। वीठू सूजा ने 'राव जैतसी रो पाघडी छद' काव्य लिखा, जिसमे 401 छद हैं। इतिहास की दृष्टि से यह अत्यन्त महत्त्वपूर्ण काव्य है।

राव जैतसी से सम्बन्धित दो अन्य काव्य 'राव जैतसी छंद' और 'जैतसी रासो' भी मिलते हैं लेकिन इनका रचयिता अज्ञात है।

बारहठ आशा—इनका जन्म सवत् 1563 के आसपास हुआ था। ये राव मालव देव के विशेष कृपापात्र थे। सुप्रसिद्ध भक्त कवि ईसरदास इनके भतीजे थे। इनकी कुल सात रचनाएं उपलब्ध होती हैं जिनमे 'उमादे भटियाणी रा कवित्त' और 'बाघजी रा दूहा' काफी प्रसिद्ध हैं। उमादे भटियाणी इतिहास मे रूठी राणी के नाम से विख्यात है। कहते है उमादे का विवाह जोधपुर के राव मालवदेव के साथ हुआ था लेकिन विवाह की प्रथम रात्रि में ही जब उमादे ने अपनी दासी भारमली के साथ मालदेव को क्रीडारत देखा तो वह रूठ गई और आजीवन रूठी रही। भारमली बाद मे कोटडा के स्वामी बाघजी के पास रहने लगी। बारहठ आशा की दोनों रचनाएं उमादे एवं बाघजी से सम्बन्धित हैं। 'बाघ जी रा दूहा' बाघजी की मृत्यु के बाद लिखे करुण रस से ओतप्रोत पिछोले (मरसिया) हैं यथा—

बाघा आव वलेह, घर कोटड़ै त घणी।
जासी फूल झड़ेह, वास न जासी बाघरी।।

बीठू मेहा—बीठू मेहा के रचना-काल के सम्बन्ध में कोई प्रामाणिक सामग्री उपलब्ध नहीं हैं। डॉ. हीरालाल माहेश्वरी के अनुसार इनका रचना-काल सत्रहवीं शताब्दी का पूर्वार्द्ध माना जाना चाहिए।[1] इनकी रचनाओं में पाबूजी रा छंद', 'गोगाजी रा रसावला' 'करणी जी रा छंद', 'चादाजी री वेल' आदि प्रमुख हैं। 'पाबूजी रा छंद' पाबूजी के शौर्य और पराक्रम से सम्बन्धित एक श्रेष्ठ रचना है।

बारहठ ईसरदास—ईसरदास का जन्म जोधपुर राज्य के भाद्रेस गांव में हुआ था। इनके जन्म के सम्बन्ध में दो मत हैं। कुछ स. 1595 मे मानते हैं तो कुछ सं. 1515 में। लेकिन डॉ. हीरालाल माहेश्वरी और डॉ. मोतीलाल मेनारिया के अनुसार इनका जन्म संवत् 1595 मानना ही उचित है।[2] ईसरदास भक्त कवि थे लेकिन इन्होंने वीररस की रचनाएं भी की हैं। चारण कवियों मे ईसरदास कवि के रूप मे माने जाते हैं। इनकी तेरह रचनाएं उपलब्ध होती हैं—1. हरिरस 2. छोटा हरि रस 3. बाल लीला 4. गुण भागवत हंस, 5. गरुड पुराण 6 गुण आगम 7. निंदा-स्तुति 8. देवियाण 9. गुण वैराट 10. सभा पर्व 11. हाला झाला रा कुंडलिया 12. रास कैलास और 13. दाणलीला।

बारहठ ईसरदास का हाला झाला रा कुंडलिया' राजस्थानी भाषा की श्रेष्ठ वीर रसात्मक कृति है जो झाला रायसिंह और हाला जसाजी के बीच हुए युद्ध से सम्बद्ध है। वीर रस से परिपूर्ण इस ग्रंथ में युद्ध का सजीव चित्रण हुआ है। इन ग्रंथो के अलावा ईसरदास के कुछ फुटकर गीत एवं दोहे भी मिलते है। उदाहरण के रूप में एक दोहा देखिए—

1. राजस्थानी भाषा और साहित्य : डॉ. माहेश्वरी, पृ. 112
2. " " पृ. 126

सैल धमोड़ा किम, सह्या, किम सहिया गजदंत ।
कठण पयोघर लागतां, कसमसतो तू कंत ॥

दूदा आशिया—ये राव सुरताण के कृपापात्र थे । इनकी कुछ फुटकर रचना प्राप्त होती हैं इनमे राठौड़ वीर कल्ला पर लिखित कुंडलियां काफी प्रसिद्ध हैं जो इनकी संख्या 17 है ।

सांदू माला—सांदू माला बीकानेर के छठे शासक राजा रायसिंह के समकालीन थे । रायसिंह ने इन्हें पुरस्कृत भी किया था । सादू माला ने बादशाह अकबर महाराणा प्रताप और रायसिंह के पराक्रम का वर्णन तीन अलग रचनाओं में झूलणा छंद में किया है । सांदू माला 'झूलणा' छंद के विशेष कवि माने जाते हैं । सांदू माला की रचनाएं निम्नलिखित हैं—

1. झूलणा महाराज रायसिंघजी रा
2. झूलणा दीवांण श्री प्रतापसिंघजी रा
3. झूलणा अकबर पातसाहजी रा

दुरसा आढ़ा—मध्ययुग के श्रेष्ठ, यशस्वी और लोकप्रिय कवियों में दुरसा आढा का सर्वोच्च स्थान है । श्री शंकरदान जेठीभाइ देथा के अनुसार, इनका जन्म संवत् 1595 मे गाव जैंतारण मे और स्वर्गवास संवत् 1708 मे हुआ । इनके सम्बन्ध में कई बातें प्रचलित हैं । कहते हैं कि छोटी अवस्था में ही जब इनके पिता का देहान्त हो गया तो बगड़ी के ठाकुर प्रतापसिंह ने इनका पालन पोषण किया । दुरसाजी का अकबर से अच्छा सम्बन्ध था और उसके शाही दरबार में इनकी अच्छी प्रतिष्ठा थी दुरसाजी हिन्दू धर्म और हिन्दू संस्कृति के अनन्य उपासक थे यही कारण है कि तत्कालीन युग में हिन्दुओं की विपन्नावस्था को देखकर दुरसाजी ने अकबर व कूटनीति पर तीखा व्यंग्य किया है । इनकी रचनाओं मे मेवाड़ के राणा प्रताप, राव चन्द्रसेन और राव सुरताण के देश प्रेम का ओजस्वी भाषा मे चित्रण किया गया है ।

दुरसा आढा की प्रमुख रचनाओं में 'विरुद्ध छिहतरी' 'किरतार बावनी' आदि हैं । कुल मिलाकर छोटी-बड़ी ब कृतियां, 125 डिंगल गीत और फुटकर पद्य प्राप्त होते हैं । इनमें 'विरुद्ध छिहतरी' काफी चर्चित रही है । प्रबंध रचनाओं में 'झूलणा राव अमरसिंह गजसिंघोत री' दुरसा आढा की सर्वश्रेष्ठ रचना है । इनकी कविता के उदाहरण देखिए—

लो नं हिन्दू ताज, सगपण रोप तुरक सूं ।
आरज कुल री आज, पूंजी राण प्रताप सी ।।
अकबर कूट अजाण, हिया फूट छोडं न हठ ।
पगां न लागण पाण, पणधर राण प्रताप सी ॥

दूदा विसराल—इन्होंने 'राठोड रतनसिंह री वेलि' की रचना की, जिसमें जैतारण के शासक रतनसिंह का मुगलों के साथ हुए युद्ध का वर्णन है । 72 छंदों का

यह लघु काव्य वीर रस की उत्तम रचना है जिसमें युद्ध और विवाह के रूपक का निर्वाह किया है।

केसोदास गाडण—ये सत्रहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध के महान कवि हैं। ये जोधपुर के महाराजा गजसिंह के प्रिय कवि थे। इनकी प्रसिद्ध रचना 'गज गुण रूपक बंध' महाराज गजसिंह के विभिन्न युद्धों से सम्बन्धित हैं। युद्ध वर्णन की प्रधानता से इसे युद्ध काव्य भी कहा जा सकता है। 130 छंदों में लिखित इस प्रबंध काव्य में वीर रस का सजीव वर्णन हुआ है। इस काव्य पर नाथ पंथ का प्रभाव भी परिलक्षित होता है।

महेसदास राव—इन्होंने लगभग सात रचनाएँ लिखी, जिनमें 'बिन्है रासो' सर्वाधिक ख्याति प्राप्त है। इसमें शाहजहाँ के तीन विद्रोही शाहजादों का शाही सेना के साथ हुए युद्ध का सजीव वर्णन है। कई स्थलों पर गौड़ वीरों का वर्णन भी है।

गिरधर आसिया—इनका लिखा हुआ 'संगत रासो' 943 छंदों का प्रबंध काव्य है जिसमें महाराणा प्रताप के छोटे भाई शक्ति सिंह के वीरतापूर्ण कार्यों का उल्लेख है।

जग्गा खिड़िया—मध्यकालीन राजस्थानी साहित्य में जग्गा खिड़िया द्वारा रचित 'वचनिका राठौड़ रतनसिंह महेसदासोत री' अत्यन्त प्रसिद्ध रचना है। (रचनाकाल—संवत् 1715) इसमें रतलाम के वीर योद्धा रतनसिंह और शाहजादा औरंगजेब के बीच हुए युद्ध का सजीव वर्णन है। अंत में रतनसिंह ने युद्ध भूमि में ही वीरगति पाई। कवि ने अपनी इस रचना में युद्ध का कलात्मक वर्णन किया है।

कुम्भकरण सांदू—इन्होंने संवत् 1732 के आसपास 'रतन रासो' ग्रन्थ की रचना की। इसके अलावा सांदू ने 'जयचंद रासो', 'महाराजा रायसिंह री सतियां रा कवित्त' एवं कुछ फुटकर गीत तथा दोहे भी लिखे।

रतनू वीरभाण—जोधपुर के महाराजा अभयसिंह और सर बुलन्दखां के बीच संवत् 1787 में अहमदाबाद में युद्ध हुआ था फलतः इस प्रसंग को लेकर राजस्थानी काव्य में तीन प्रसिद्ध कवियों ने अपने-अपने ढंग से रचनाएँ लिखी। रतनू वीरभाण ने 'राजरूपक', करणीदान ने 'सूरज प्रकास' और खिड़िया बखता ने 'अहमदाबाद रा झगड़ा रा कवित्त' नाम से रचना लिखी। 'राजरूपक' और 'सूरज-प्रकाश' वीर रस की प्रसिद्ध एवं श्रेष्ठ कृतियां हैं।

हमीरदान रतनू—इनकी प्रसिद्ध कृति 'देसलजी री वचनिका' है। कहते हैं कि इन्होंने विभिन्न विषयों पर 175 ग्रन्थ लिखे हैं।

आढा पहाड़खान—इन्होंने 'गोगादे रूपक' की रचना संवत् 1780 एवं 1811 के बीच की। इसमें राठोड़ गोगा का जोइयों से युद्ध कर वीरगति प्राप्त करने का वर्णन है। इसकी कथावस्तु बादर ढाढी कृत 'रामायण' से मिलती-जुलती है।

गाडण गोपीनाथ—इन्होंने अठारहवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में 'ग्रन्थराज' की रचना की जो बीकानेर के महाराजा गजसिंह के जीवन से सम्बद्ध है।

खिड़िया हुकमीचंद—ये उन्नीसवीं शताब्दी के प्रसिद्ध एवं लोकप्रिय डिंगल गीतकार थे। इनके डिंगल गीत काफी चर्चित रहे हैं। चारणों में इनके गीतों को कंठस्थ करने की परम्परा रही है।

बांकीदास—ये मध्य युग के अंतिम बड़े कवि हैं। इनका जन्म जोधपुर राज्य के पंचभद्रा क्षेत्र के भाडियावास नामक गांव में सं. 1828 में हुआ था। 16 वर्ष की उम्र में ये जोधपुर आ गये और काव्य, व्याकरण, इतिहास आदि की शिक्षा दीक्षा पाकर तत्कालीन महाराजा मानसिंह के कृपा-पात्र कवि हो गये। बांकीदास संस्कृत डिंगल, फारसी और ब्रजभाषा के भी विद्वान थे। इन्होंने लगभग 30 ग्रंथ एवं फुटकर गीत लिखे। बांकीदास की गणना आज डिंगल की प्रथम पंक्ति के कवियों में की जाती है।

बांकीदास आधुनिक जीवन की असंगतियों पर भी तीखा प्रहार करने वाले कवि थे। अंग्रेजी साम्राज्य के विरुद्ध बांकीदास ने देशवासियों को तीखी चेतावनी दी है। इनका 'चेतावणी का गीत' काफी प्रसिद्ध है। उनकी कविता का एक उदाहरण देखिए—

> सूर न 'पूछै टीपणो, सुकन न 'देखै सूर।
> मरणा नैं मंगल, गिणै, समर चढ़ै मुख नूर।।

हिन्दी कविताओं में राष्ट्रीय भावनाओं का श्री गणेश जहाँ भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के काल से मानते हैं, वहाँ यह जानकर आश्चर्य होगा कि बांकीदास ने बहुत पहले जातीयता से ऊपर उठकर हिन्दू-मुस्लिम ऐक्य की राष्ट्रीय भावना को इस प्रकार अभिव्यक्त किया था—

> आयो इंगरेज मुलक रै ऊपर
> राखो रे किहिक रजपूती, मरदां हिन्दू की मुसलमाण।

इस तरह बांकीदास का यह उद्बोधन गीत तत्कालीन युग की एक महत्त्वपूर्ण रचना कही जायेगी। वीर रस की कविताएँ लिखने वाले अन्य कवियों में बारहठ शंकर, बारहठ लाला, कल्याणदास माडू आदि प्रमुख हैं।

(ग) पौराणिक धार्मिक काव्य—इस धारा के अन्तर्गत चारण कवियों का ऐसा काव्य आता है जो पौराणिक और धार्मिक विषयों को लेकर लिखा गया है। इसमें भगवान के सभी अवतारों को लेकर रचनाएँ मिलती हैं लेकिन राम और कृष्ण से सम्बन्धित अधिक काव्य उपलब्ध होता है। इनके अलावा कुछ साहित्य चारणी देवियों पर—आवड़जी, महमाय, चानेराय, करणी जी— कुछ निर्गुण भक्ति परक रचनाओं के रूप में दिखाई देता है। यहाँ प्रबन्ध [illegible] काव्य के रूप में उपलब्ध होने वाली प्रमुख रचनाओं के [illegible] है—

पृथ्वीराज राठौड़—राठौड़ पृथ्वीराज बीकानेर नरेश राव कल्याणमल के बेटे ग्रौर जैतसी के पोते थे। इनका जन्म सं 1606 ग्रौर मृत्यु सं. 1657 में हुई। वहुमुखी प्रतिभा के घनी पृथ्वीराज राजस्थानी साहित्य के सर्वोत्कृष्ट कवियों में एक हैं। ये कवि और भक्त दोनों रूपों मे ख्याति प्राप्त कर चुके थे। इन्हें डिंगल, ब्रज, और संस्कृत का गहरा ज्ञान था। पृथ्वीराज स्वाभिमानी, स्पष्टवक्ता एवं राष्ट्रीय विचारधारा के व्यक्ति थे। यही कारण है कि उन्होंने ग्रकबर के लिये 'ग्रकबरियाह' 'तुरकडा', ठग ग्रादि शब्दों का प्रयोग किया था। पृथ्वीराज की निम्नलिखित रचनाएं प्रसिद्ध हैं—

1. वेलि क्रिसन रुकमणी री
2. ठाकुर जी रा दूहा
3. गंगा जी रा दूहा
4. फुटकर दोहे ग्रौर गीत

पृथ्वीराज राठौड़ की प्रमुख कृति 'वेलि क्रिसन रुकमण री' है। शृंगार, भक्ति और वीर रस के सुन्दर समन्वय से परिपूर्ण प्रस्तुत कृति 304 छंदों में लिखी हुई है जिसमें कृष्ण ग्रौर रुकमणी का प्रेम-वर्णन है। इसे डिंगल की सर्वश्रेष्ठ रचना बताते हुये कवि दुरसा आढा ने इसे पांचवा वेद ग्रौर उन्नीसवां पुराण कहा है। 'वेलि' पर ग्रनेक टीकाएं लिखी गईं जो इसकी लोकप्रियता की सूचक हैं। भावपक्ष, कलापक्ष उपमा वर्णन, प्रकृति चित्रण ग्रादि की दृष्टि से यह प्रौढ एवं सशक्त कृति है। शृंगार और प्रेम का चित्रण अत्यन्त मार्मिक, मौलिक ग्रौर नवीनता लिए हुए है। इसकी भाषा साहित्यिक राजस्थानी है। इसमे डिंगल के प्रसिद्ध छद वेलियो गीत का प्रयोग हुआ है। एक उदाहरण देखिये—

संग सखी सील कुल वेस समाणी, पेखि कली पदिमणी परि।
राजति राजकुग्रंरि राय ग्रंगण, उडियण अम्ब हरि।।

किसनो—इनकी प्रसिद्ध रचना महादेव पार्वती री वेलि है जो 382 छंदों में लिखी हुई है। इसमें शिव के सती और पार्वती के साथ हुए दो विवाहों का वर्णन है। रचनाकार का नाम किसनउ (किसनो) मिलता है।

केसोदास गाडण—केसोदास ने वीर रस की रचनाओं के साथ-साथ भक्ति विषयक रचनाएं भी लिखी जिनमें 'निसाणी विवेकवार' 'छंद महादेव जी रो' तथा 'छंद श्री गोरखनाथ' उल्लेखनीय हैं। 'नीसाणी' में, वेदान्त और भक्ति का सुन्दर वर्णन है।

माधोदास दधवाड़िया—ये दधवाड़िया गौत्र के चारण चूंडा जी के बेटे थे इनका जन्म सं. 1610 ग्रौर 1615 के बीच मेड़ता के पास बलूंदा गांव में हुग्रा। माधोदास उच्चकोटि के कवि एवं भक्त थे। इनकी प्रसिद्ध कृति 'राम रासो' है जो मध्य युग की उल्लेखनीय कृतियों में एक है। वाल्मीकि की रामायण से प्रेरित

यह रचना भाव और भाषा की दृष्टि से सशक्त है। कवि की दूसरी रचना 'नीसाणी गजमोख' भी महत्वपूर्ण है।

सांयाजी भूला—ये ईडर राज्य के लीलछा गांव के निवासी चारण स्वामी दास के दूसरे पुत्र थे। इनका जन्म संवत् 1632 में और स्वर्गवास संवत् 1703 में हुआ। सांयाजी कृष्ण के अत्यन्त भक्त थे। इनकी रचनाएँ कृष्ण भक्ति से ओतप्रोत हैं। इनके दो ग्रंथ उपलब्ध हैं—'रुकमणी हरण' और 'नागदमण'। 'नागदमण' सांयाजी का सजीव एवं प्रौढ़ काव्य है। इसमें कालिय मर्दन की कथा कही गई है। 'नागदमण' दृश्य-वर्णन, रूप-वर्णन और संवादों के कारण विशिष्ट रचना मानी जाती है।

सुरजनदास पूनिया (सं. 1640–1748)—इनकी रचनाओं में 'कथा हरिगुण' 'कथा गजमोख' और 'रामरासो' प्रमुख है। इनमें 'रामरासो' 176 छंदों में लिखित वीर रसात्मक कृति है और कथा की दृष्टि से इसमें पर्याप्त नवीनता है।

कल्याणदास—इन्होंने 'गुण गोविन्द' (रचना काल. सं. 1700) की रचना की है जिसमें राम और कृष्ण की लीलाओं का वर्णन है। साहित्य की दृष्टि से यह अत्यन्त महत्वपूर्ण कृति है।

बारहठ ईसर दास—'हाला-झाला रा कुंडलियां' के रचनाकार बारहठ ईसर दास ने कुछ भक्ति सम्बन्धी रचनाएँ भी लिखी जिनमें 'हरिरस' और 'गुण निधातत' प्रमुख हैं।

मुरारीदास बारहठ—इनकी 'लिखी' 'गुण विजय ब्याह' रचना प्राप्त होती है इसमें कृष्ण-रुकमणी विषयक कथा का उल्लेख है।

कृपाराम खिड़िया (सं. 1800 से सं. 1890)—इनका जन्म जोधपुर क्षेत्र में खराड़ी गांव में हुआ था। ये खिड़िया शाखा के चारण थे। ये बड़े होने पर सीकर के रावराजा देवी सिंह के पास आ गये थे और रावराजा लक्ष्मण सिंह के समय तक वहीं रहे। इन्हें जागीर में गाव भी मिला जो आज भी 'कृपारामजी की ढाणी' के नाम से जाना जाता है। 'राजिये के सोरठे' नाम से इनकी प्रसिद्ध कृति है जिसमे इन्होंने अपने नौकर राजिया को सम्बोधित करके नीति से सम्बन्धित सोरठे लिखे है। राजिया के सोरठे लोक-जीवन में काफी लोक प्रिय हैं। राजस्थानी के नीति काव्य में कृपाराम की यह मौलिक एवं अनूठी देन है। एक सोरठा देखिए—

मुख ऊपर मीठास, घट मांही खोटा घड़ै।
इसड़ा सूं इखलास, राखीजै नहं राजिया॥

ओपा आढा—ये मध्ययुग के अन्तिम प्रसिद्ध भक्त कवि हैं। इनका रचना काल सं. 1860 से सं. 1890 माना जाता है। इनके फुटकर गीत ही उपलब्ध होते हैं। इनके गीतों में सरसता और मार्मिकता है।

इस तरह पौराणिक धार्मिक काव्य लिखने वाले इन कवियों में श्रीधर व्यास की 'दुर्गासप्तशती' जर्सिंह (16वी शताब्दी) का 'हरिरासु', अल्लू जी कविया (सं.

1525-1625) के भक्तिपरक छंद, बारहठ आसा (सं. 1550-1650) क 'गुण निरजण प्राण', चूंडो जी दधवाडिया (रचनाकाल स. 1620-1625) की निसंधाबध और गुण वाचक वेलि, सांखला करमसी रुणेचा की 'किसन जी री वेलि, कुशलाभ की 'दुर्गासात्तसी', विट्ठल दास का 'रुकमणी हरण' महेस दास राव का 'रघुनाथ चरित नव रस वेलि' मुहता रुघनाथ का 'रूघरासो' अईदान गाडण का 'श्री भवानी शंकर री गुण शिव पुराण', केसरी सिंह जैतावत का 'पंखी पुराण', जती जयचन्द की 'माता जी री वचनिका' आदि रचनाएँ उल्लेखनीय हैं।

2. आख्यान काव्य—मध्य युग में आख्यान काव्यों की लम्बी परम्परा रही है ये आख्यान पौराणिक और धार्मिक प्रसंगों पर आधारित हैं तथा जन सामान्य की भाषा में अनेक राग-रागनियों में प्रस्तुत किये गए हैं। नाटकीय शैली में लिखे इन आख्यानों का सामाजिक और सांस्कृतिक दृष्टि से बड़ा महत्व है और इनके द्वारा चरित्र निर्माण एवं समाज सुधार की भावना पर बल दिया गया है। कुछ प्रमुख आख्यानों के रचनाकार निम्नलिखित हैं—

डेल्हजो (सं. 1490-1550)—इन्होंने अभिमन्यु की कथा को आधार बनाकर 'अहमनी' नाम से 717 छंदों का आख्यान लिखा है इसमें वीर एवं करुण रस की प्रधानता है तथा यह युगीन परिवेश एवं लोक प्रचलित मान्यताओं को लेकर चला है।

पदम भगत—इनका 'रुकमिणी मगल' तो राजस्थान में सर्वाधिक लोकप्रिय आख्यान रहा है तथा इसे लोक जीवन का अभिन्न अंग माना जा सकता है। इस आख्यान का रचना काल संवत् 1550 के आस-पास रहा होगा।

मेहोजी—इन्होंने रामचरित पर आधारित अपने ढंग का 'रामायण' नाम से आख्यान लिखा है और यह मध्य युग का सर्वोत्कृष्ट आख्यान है। आख्यान की पात्र योजना नवीन और यथार्थवादी है। इस आख्यान का रचना काल संवत् 1575 है।

फैसोजी (सं. 1630-1736)—इनके चार आख्यान उपलब्ध होते हैं— 'कथा मीर्थ दुमासणी' 'कथा सुरगा रोहणी', 'कथा वहूसोवनी, और प्रहलाद चरित। इनमे प्रहलाद चरित सबसे अधिक महत्वपूर्ण आख्यान है। इसमें कुल 696 छंद हैं तथा वात्सल्य एवं करुण भावों की प्रधानता है।

इस युग के अन्य आख्यानो मे सुरजन जी रचित 'कथा उषा पुराण' तथा 'प्रहलाद पुराण, रुस्तम जी रचित 'किसन ब्यावलो, सरवण जी रचित 'सीता पुराण' तथा परशुराम देवाचार्य द्वारा रचित कई उल्लेखनीय आख्यान हैं।

3. संत काव्य—राजस्थानी लोक जीवन में संतों का सम्पर्क और प्रभाव आरम्भ से ही रहा है। इन संतों ने धार्मिक एवं आध्यात्मिक भावना के जागरण एवं उत्थान में महत्वपूर्ण योग दिया है। इन संतो के कारण राजस्थानी साहित्य की

अच्छी अभिवृद्धि हुई। ये संत अधिक पढ़े-लिखे नहीं थे तथा काव्य-निर्माण के प्रति जागरुक भी नहीं थे क्योंकि इनका मुख्य उद्देश्य तो सीधे-सरल रूप में अपने विश्वास एवं मान्यताओं को प्रस्तुत करना था इसलिए धर्म-सिद्धांतों के प्रचार एवं लोक कल्याण की भावना के कारण इनके काव्य में कलात्मकता का अभाव है। संत कवियों को दो भाग में बांटा जा सकता है—

1. सम्प्रदाय विशेष से सम्बद्ध संत कवि।

2. सम्प्रदायेत्तर कवि।

इनमें प्रमुख सम्प्रदायों का परिचय निम्नलिखित है—

1. नाथ सम्प्रदाय—नाथ सम्प्रदाय का प्रवर्तन गोरखनाथ (लगभग 11वीं शताब्दी) ने किया था। इनकी परम्परा में नौ नाथ और नाथों के बारह पंथ प्रमुख रहे हैं। राजस्थान में नाथों का व्यापक प्रभाव रहा है। पृथ्वीनाथ (17वीं शताब्दी) मध्य युग के प्रसिद्ध संत हुए हैं जिनकी 29 कृतियों का पता चला है। जोधपुर के महाराजा मानसिंह (सं. 1839-1900) नाथों के परम भक्त रहे हैं। बनानाथ (रचनाएँ—'अनुभव प्रकाश' और 'परवाना') नवलनाथ और उत्तमनाथ इस सम्प्रदाय के अच्छे कवि कहे जा सकते हैं।

2. विश्नोई सम्प्रदाय— इस सम्प्रदाय के प्रवर्तक जाम्भो जी (सं. 1508-1593) थे। यह सगुणोन्मुख निर्गुण सम्प्रदाय है। इस सम्प्रदाय के कवियों की भाषा राजस्थानी है. इनमें ऊदोजी नैण, वील्हो जी, केसो जी, सुरजन जी, परमानंद जी हरचन्द जी आदि प्रमुख है।

जसनाथी सम्प्रदाय—इस सम्प्रदाय के प्रवर्तक जसनाथ जी (सं. 1539-1563) थे। यह सम्प्रदाय विचार-दर्शन में विश्नोई सम्प्रदाय से मिलता-जुलता है। इस सम्प्रदाय के करमदास, देवोजी, लाल नाथ, चोखनाथ आदि कुछ ऐसे प्रसिद्ध कवि हैं जिन्होंने राजस्थानी भाषा में अपनी रचनाएँ लिखी हैं।

निरंजनी सम्प्रदाय—यह पंथ हरिदासजी से चला है। इनके अनुयायी निरंजन निराकार की आराधना करते हैं। इनमें कुछ गृहस्थ हैं तो कुछ निहंग। इस सम्प्रदाय पर बाद में सगुण भक्ति का प्रभाव भी पड़ा। डीडवाना के पास गाढा निरंजनियों का प्रधान केन्द्र है। हरिदासजी की वाणी में राजस्थानी के साथ ब्रज भाषा के शब्द भी हैं। तुलसीदास, जगजीवनदास, भगवानदास, मनोहरदास, सेवादास आदि इस सम्प्रदाय के कुछ ऐसे संत कवि हैं जिन्होंने राजस्थानी भाषा में भक्ति परक रचनाएं प्रस्तुत की हैं।

दादू पंथ—इस पंथ के प्रवर्तक संत दादूदयाल थे। इनके जीवन सम्बन्धी तथ्यों के बारे में मतभेद है, पर कुछ भी हो दादू का कार्यक्षेत्र राजस्थान रहा। राजस्थान में विभिन्न स्थानों पर घूमते हुए ये जीवन के अन्तिम दिनों में नराणा में रहने लग गये थे और फिर वहीं ब्रह्मलीन हुए। अतः नराणा दादू पंथी साधुओं

की प्रधान गद्दी है। दादू पंथ आगे चलकर पांच शाखाओं में विभाजित हो गया—1. खालसा, 2. नागा, 3. उत्तराढी, 4. विरक्त और 5. खाकी। दादू की कविता की भाषा राजस्थानी है। दादू पंथ के अन्य कवियो में बखनाजी, रज्जबजी, सुन्दरदासजी (छोटे) संतदास बारह हजारी, भीखजनजी, वाजिद आदि प्रमुख हैं जिन्होंने भी राजस्थानी भाषा में अपनी रचनाएं की है। कई स्थानों पर राजस्थानी मिश्रित ब्रज एवं खड़ी बोली दिखाई देती है।

लालदासी सम्प्रदाय—लालदासी सम्प्रदाय या लाल पंथ के प्रवर्तक लालदास जी हैं। इनका जन्म अलवर के पास धोलोदूप में एक मेव परिवार में हुआ। इनके उपदेशों में परमात्मा का स्मरण-कीर्तन एवं कमाकर खाना है। इनकी प्राप्त रचनाओं में 125 दोहे और 60 पद हैं। इस सम्प्रदाय के अन्य कवियों में हरिदास, डूंगरजी साध प्राणी साध, भीखन साध आदि की गणना है।

चरणदासी पंथ—इसके प्रवर्तक चरणदास हैं। यह पंथ कबीरपंथ से मिलता जुलता है। इस पंथ मे गुरुचरणों का आश्रय सर्वोच्च साधन है। चरणदास ने मूर्ति पूजा का खण्डन करते हुए निराकार ईश्वर की उपासना पर बल दिया। इस पंथ की दयाबाई और सहजोबाई की रचनाएं भक्ति परम्परा में महत्वपूर्ण स्थान रखती हैं। इनके पदो की भाषा राजस्थानी, ब्रज और खड़ी बोली मिश्रित है। जोगजीतजी, रामरूपजी आदि अनेक कवि इस पंथ में हुए लेकिन इनकी भाषा खड़ी बोली है।

रामस्नेही सम्प्रदाय—रामस्नेही सम्प्रदाय की राजस्थान में चार शाखाएं दिखाई देती है:

1. रामस्नेही सम्प्रदाय, शाहपुरा—इसके प्रवर्तक रामचरणजी महाराज (सं० 1776–1855) थे। इनके अनुयायी निर्गुण परमेश्वर को राम के नाम से मानते हैं तथा मूर्ति पूजा मे विश्वास नही रखते। इनकी वाणी में 36 हजार श्लोक हैं जो निर्गुण भक्तिपरक विषयों का विश्वकोष कहा जा सकता है। इस सम्प्रदाय के अन्य कवियो मे रामजनजी, भगवानदासजी, नवलरामजी, रामप्रतापजी, दुल्हेरामजी, जगन्नाथजी आदि हैं।

2. रामस्नेही सम्प्रदाय, रैण (मेड़ता)—इसके अनुयायी दरियावजी को अपना आदि गुरु मानते हैं। इनका गुरुद्वारा रैण मे है। इनका रहन-सहन और उपासना पद्धति शाहपुरा और खेड़ापे के रामस्नेहियों से मिलती है। ये भी निर्गुण ईश्वर को मानते हैं। दरियाव जी की 412 साखियां और लगभग 30 पद मिलते हैं। इस सम्प्रदाय के अन्य कवियों में पूर्णदास, किशनदास, नानकदास, मनसाराम, हरखाराम आदि प्रमुख हैं।

3. रामस्नेही सम्प्रदाय, सींथल (बीकानेर)—इस सम्प्रदाय के प्रवर्तक हरिरामजी है। सींथल उनका जन्म स्थान है। यह भी निर्गुण सम्प्रदाय है। इस

सम्प्रदाय के कवियों में हरिदेवदासजी, नारायणदासजी, पीरारामजी आदि प्रसिद्ध कवि हैं।

4. रामस्नेही सम्प्रदाय, रैड़ापा—इसके प्रवर्तक रामदासजी (सं० 1783-1855) हैं जो सीथल शाखा के प्रवर्तक हरिदासजी के शिष्य थे और उन्हीं की प्रेरणा से इस नवीन शाखा की स्थापना हुई। इनकी वाणी भी निर्गुण परक है। इस शाखा के कवियों में दयालुदास, परसुराम, पीथोदास, पूरणदास आदि प्रमुख हैं।

मध्ययुग के अन्य संत सम्प्रदायों में रसिक सम्प्रदाय (रैवासा) निम्बार्क सम्प्रदाय (सलेमाबाद) गूदड़ पंथ (दांतड़ा, भीलवाड़ा) मस्तिमा सम्प्रदाय (बीकानेर) भईपंथ (बिलाड़ा) आदि हैं। इन सम्प्रदायों में जितने भी संत थे, उन्होंने अपनी वाणी को राजस्थानी भाषा में अभिव्यक्त किया है।

सम्प्रदायेत्तर संत कवि—कुछ ऐसे कवि थे जो किसी सम्प्रदाय से नहीं जुड़े हुए थे लेकिन उनकी संत वाणी राजस्थानी साहित्य की अनमोल निधि के रूप में मानी जाती है। सम्प्रदायेत्तर संत कवि निम्नलिखित हैं—

पीपा जी—पीपा जी की कुछ साखियां और 25 पद मिलते हैं। पदों में निर्गुण भक्तिपरक भावनाएं हैं। इनकी भाषा राजस्थानी मिश्रित ब्रज है।

काजी महमूद (सं. 1450-1550)—इनके 35 पद मिलते हैं जिनकी भाषा राजस्थानी मिश्रित खड़ी बोली है।

मीराबाई—भक्त कवयित्री के रूप में राजस्थान की मीराबाई का नाम सर्वोच्च रूप से विख्यात है। मीराबाई के जन्म स्थान, जीवनकाल और व्यक्तित्व के सम्बन्ध में भिन्न-भिन्न मत दिखाई देते हैं। मीरा का जन्म कुड़की (मेड़ता) गांव में 1504 ई. में एवं मृत्यु 1558 से 1563 ई. के मध्य हुई। मीरा वैष्णव भक्त राव दूदा की पौत्री थी। इसका विवाह राणा सांगा के ज्येष्ठ पुत्र भोजराज से हुआ था। दुर्भाग्य से भोजराज का स्वर्गवास हो गया और फिर मीरा लौकिक बन्धनों से पूर्ण मुक्त होकर कृष्ण भक्ति में समर्पित हो गई और बाद में द्वारका चली गई। कहते हैं वहीं रणछोड़जी के मन्दिर में भजन-कीर्तन करते हुए, मीरा ने शेष जीवन व्यतीत किया।

मीराबाई द्वारा रचित पूर्ण या अपूर्ण रचनाओं में कुल ग्यारह हैं—गीत गोविन्द की टीका, नरसीजी का मायरा, राग सोरठ का पद, मलार राग, राग गोविन्द, सत्यभामानुं रूसणं, मीरा की गरबी, रुकमणी मंगल, नरसी मेहता की हुण्डी, चरीत (चरित्र) स्फुट पद। इनमें 'स्फुट पद' ही मीरा की प्रामाणिक रचना है। मीराबाई के काव्य की भाषा राजस्थानी मिश्रित ब्रज है।

दीन दरवेश—(संवत् 1810-1890)—मध्ययुग के श्रेष्ठ संत कवियों में इनकी गणना है। इनकी दीनप्रकाश, ग्रन्थ-ग्रदलानन्द, परमार्थ प्रसंग आदि दस रचनाएं प्राप्त हैं। भाषा राजस्थानी मिश्रित खड़ी बोली है।

सम्प्रदायेत्तर अन्य कवियों में संत ज्ञानीजी, मद्. गवरीबाई, संत मावजी, नामदेव श्रीकृष्णदास आदि हैं।

4. लौकिक काव्य—मध्यकाल मे प्रेमकाव्य से सम्बन्धित अनेक रचनाएं मिलती हैं इनमें कुछ ऐसी हैं जिनके रचयिता अज्ञात है तो कुछ ऐसी हैं जिनके रचयिता ज्ञात। अतः इन्हें निम्नलिखित दो रूपों में विभाजित किया जा सकता है—

(क) ज्ञात रचनाकारों की रचनाएं।

(ख) अज्ञात रचनाकारों की रचनाएं।

(क) ज्ञात रचनाकारों की रचनाएं :—

ज्ञात रचनाकारों की रचनाओं में पाठ की दृष्टि मे विशेष अन्तर नही दिखाई देता है। ये निम्नलिखित हैं :—

गणपति—इन्होंने 'माधवानल कामकंदला प्रबन्ध' की रचना की है। इसमें महाकाव्य की शैली में लगभग 2500 दोहों में लिखी माधव और कामकदला की प्रेमकथा है। समाजशास्त्रीय अध्ययन की दृष्टि से यह महत्वपूर्ण काव्य है। इसमें 'बारहमासा' के माध्यम से विरह-वर्णन किया गया है। इसमें कई स्थलों पर समस्या-मूलक पहेलियां भी दी गई हैं।

जल्ह—इन्होंने 'बुद्धिरासो' (रचनाकाल 16वीं शताब्दी) काव्य की रचना की है जिसमें चम्पावती के राजकुमार और एक वैश्यापुत्री की प्रेमकथा है। अन्त में राजकुमार और वैश्यापुत्री दोनों एक-दूसरे को पति-पत्नी के रूप में अपनाने को तैयार हो जाते हैं। 'बुद्धिरासो' की भाषा अपभ्रंश मिश्रित राजस्थानी है।

दामो—इनका लिखा हुआ काव्य 'लखमसेन पद्मावती चउपई (रचनाकाल सम्वत् 1516) है। इसमें लखमसेन के वीरतापूर्ण कार्यों और उसके प्रेम की कथा लगभग 300 दोहों और चौपाइयों में कही गई है। काव्य रूढ़ियों और भाषा की दृष्टि से यह महत्वपूर्ण रचना है।

अन्य प्रेम काव्यों में जैन कवि कुशलाभ का 'माधवानल कामकंदला चउपई'' (रचनाकाल सम्वत् 1616) दामोदर का ''माधवानल कथा' (सत्रहवीं शताब्दी) आदि मिलते हैं।

(ख) अज्ञात रचनाकारों की रचनाएं—कुछ ऐसे प्रेमाख्यान भी मिलते है जिनके रचनाकारों के सम्बद्ध मे प्रामाणिकता से कुछ भी नही कहा जा सकता। ऐसी प्रेमकथाएं कई रूपों मे मिलती हैं अतः उनके कई पाठान्तर भी मिलते हैं। प्रमुख प्रेमकाव्य निम्नलिखित हैं—

ढोला मारू रा दूहा—इस ग्रंथ के रचनाकाल और रचयिता के सम्बन्ध में मतभेद की स्थिति दिखाई देती है। जैन कवि कुशलाभ ने इसके बिखरे हुए दोहों को कथा-सूत्र में पिरोकर 'ढोला मारवण री चौपई' की रचना सवत् 1617 में की थी। इसमें 'दूहा घणां पुराणां अछइ' पंक्ति से संकेत मिलता है कि इन दोहों की रचना

संवत् 1617 से पूर्व ही हो गई थी। डॉ. हीरालाल माहेश्वरी के अनुसार इसकी रचना संवत् 1500 के आसपास हुई होगी।[1] 'ढोला मारु रा दूहा' शुद्ध प्रेमाख्यान है जिसमें ढोला एवं मारवणी की प्रेमकथा दोहों में वर्णित है। इसे जातीय काव्य या लोक भाषा काव्य की संज्ञा दी गई है। इस लोक प्रसिद्ध प्रेमगाथा में विप्रलम्भ शृंगार का मार्मिक चित्रण हुआ है। नारी हृदय की हृदयस्पर्शी भावनाओं का भावलिक पुट के साथ मनोहारी वर्णन किया गया है। मारवणी का विरह वर्णन राजस्थानी शृंगार साहित्य की उपलब्धि कहा जायेगा। शृंगार के भावपूर्ण दोहों के कारण इस काव्य में सरसता और सजीवता आ गई है। मारवणी के विरह-वर्णन के कुछ दोहे उदाहरण के रूप में देखिए—

> बिज्जुलियाँ नीलज्जियां, जलहर तूं ही लज्जि।
> सूनी सेज विदेस प्रिय, मधुरै मधुरै गज्जि॥
> पंथी हाथ संदेसड़इ, धण बिललंती देह।
> पगासूं काढइ लीहटी, उर आंसुआं भरेह॥

जेठवा रा सोरठा—इन सोरठों में जेठवा और उजली की प्रेमकथा वर्णित है। दोनों में अगाध प्रेम होते हुए भी वे जातीय बंधन के कारण विवाह नहीं कर सके फलतः उजली ने जेठवा के प्रति अपने विरहोद्गारों को प्रकट किया है। इन सोरठों का रचना-काल सं. 1400–1500 के बीच माना है।

नागजी-नागमती—नागजी-नागमती प्रेमकथा से सम्बन्धित लगभग 50 दोहे मिलते हैं। नागमती या सुगना नागजी को चाहती थी लेकिन उसका विवाह किसी अन्य से कर दिया। जब सुगना अपने ससुराल जाने लगी तो उसने नागजी की चिता को देखा क्योंकि उधर नागजी ने नागमती के विरह से पीड़ित होने के कारण आत्म-हत्या करली थी फलतः नागमती इसी चिता में जलकर भस्म हो गई। प्राप्त दोहों में नागमती की करुण पुकार है। देखिए—

> नागा नागर बेल, पसरै पण फूलै नहीं।
> आसपणं रो मेल, बिछड़ै पण भूलै नहीं॥

सेणी-बीजाणंद—सेणी-बीजाणंद की प्रेमकथा भी लोक प्रचलित है। बीजाणंद सेणी के घर के सामने आकर वीणा बजाता था जिससे दोनों में प्रेम हो गया लेकिन बाद में सेणी के पिता ने बीजाणंद के सामने एक ऐसी शर्त रखी जिसको वह निर्धारित समय में पूरा नहीं कर सका। इस पर सेणी हिमालय में गलने के लिए चली गई। बीजाणंद जब उसको लाने के लिए गया तो सेणी ने वीणा सुनते-सुनते प्राण त्याग दिए। इस कथा से सम्बन्धित 80 मार्मिक दोहे प्राप्त होते हैं। इनका रचना काल लगभग संवत् 1550 है। एक दोहा देखिए—

---

1. सांस्कृतिक राजस्थान : सं. रतनशाह, पृ. 22

बीभा हूं बिलखी फिरूं, दवरी दाधी वेल ।
वणजारा री आग ज्यूं, जयो धुकती मेल्ह ।

बीभां-सोरठ—यह प्रेमकथा राजस्थान और गुजरात में काफी लोकप्रिय है। इससे सम्बन्धित 75 दोहे मिलते हैं। इसका रचना काल भी सोहलवीं शताब्दी का आरम्भ है। एक दोहा देखिए—

बीभा था कह कारणइ, तोड्यउ नवसर हार ।
लोक जांणई मोती चुणइ झिम झिम करूं जुहार ।।

जलाल-बूबना—इस प्रेमकथा में जलाल और बूबना का प्रेम, मिलन और विरह चित्रित है। इसमें सम्बन्धित लगभग 1 0 दोहे प्राप्त हैं।

इस प्रकार प्रेमाख्यानों सम्बन्धी कई दोहे और सोरठे मध्ययुग में लिखे हुए प्रतीत होते हैं।

जैन काव्य—जैन काव्य सोद्देश्य रूप में लिखा गया है। इसमें जो चरित और कथाकाव्य मिलते हैं उनका उद्देश्य पापों के दुष्परिणामों से मुक्ति दिलाकर जन साधारण को धर्मोन्मुख करना है अतः धर्म इन काव्यों का मूल तत्व है। चरित काव्यों में इन्होंने ऐसे ही महापुरुषों के जीवन को प्रस्तुत किया है जो प्रेरणादायी हैं। मध्ययुग के प्रमुख जैन कवि निम्नलिखित हैं—

ब्रह्म जिनदास—ये विद्वान एवं कवि थे। इन्होंने 50 से ऊपर हिन्दी एवं राजस्थानी मिश्रित गुजराती में अपने काव्य लिखे। इनके अधिकांश काव्य 'रास' हैं जिनमें 'रामायण' या 'राम सीता रास' सबसे प्रसिद्ध रचना है।

छीहल—ये 16वीं शताब्दी उत्तरार्द्ध के कवि थे। इनकी पांच छोटी-छोटी रचनाएं प्राप्त होती हैं—'पंच सहेली गीत' पंथी गीत, 'उदरगीत' 'पंचेन्द्रिय बेल' तथा 'नाम बावनी'। 'पंच सहेली' बोलचाल की राजस्थानी मे प्रभावशाली रचना है।

कुशललाभ—ये चर्चित जैन कवि रहे है। इनकी समस्त रचनाएं राजस्थानी भाषा में हैं। कुशललाभ की रचनाएं चार रूपों में दिखाई देती हैं—

1. प्रचलित लोककथाओं पर—माधवानल चौपाई, ढोला मारवणी चौपाई।
2. जैन परम्परा मे प्रचलित कथानकों पर—अगड़दत्त रास, पूज्यवाहण गीत।
3. देवी या शक्ति पर—दुर्गासात्तसी, भवानी छंद आदि।
4. छंद शास्त्रीय ग्रंथ—पिंगल शिरोमणि।

इनमें 'माधवानल' और 'ढोला मारवणी री चौपाई' सरस काव्य हैं।

समय सुन्दर—17वी शताब्दी के जैन कवियों में इनका विशिष्ट स्थान इनकी प्रतिभा पांडित्य एवं कवित्व से परिपूर्ण थी। इन्होंने संस्कृत के राजस्थानी भाषा में काफी साहित्य की रचना की है जिनमें 'मृगावती

'पुण्यसार रास', 'नलदमयंती चौपाई', 'सीताराम चौपाई', 'वस्तुपाल-तेजपाल रास' आदि प्रमुख हैं।

हेमरतन सूरि—इनकी प्रसिद्ध रचना 'गोरा बादल चरित्र' है। यह 619 पद्यों में लिखित उत्तम कोटि का काव्य है। पद्मिनी—अलाउद्दीन विषयक प्रसंग में लिखे गए काव्यों में यह महत्त्वपूर्ण रचना है। सूरि की अन्य रचनाओं में महिपाल चौपाई, अमरकुमार चौपाई, सीता चौपाई आदि हैं।

लब्धोदय—इन्होंने लगभग 7 प्रबन्धात्मक कृतियां लिखी जिनमें पद्मिनी चरित चौपाई', 'मलय सुन्दरी चौपाई' 'रत्नचूड़ चौपाई' तथा 'गुणावली चौपाई' प्राप्य हैं। काव्य की दृष्टि से पद्मिनी चरित चौपाई' का विशेष महत्त्व है।

जिनहर्ष—इन्होंने लगभग 74 बड़ी रचनाएं लिखी, जिनमें 'चंदन मलयागिरि चौपाई', 'कुसुमश्री महासती चौपाई', 'विद्या विलास रास' आदि प्रमुख हैं। इनके अलावा इन्होंने प्रेम, नीति, धर्म से सम्बन्धित 300 पद एवं छंद भी लिखे।

धर्मवर्द्धन—अठारहवीं शताब्दी के जैन कवियों में इनका महत्त्वपूर्ण स्थान है। जैन कथानकों के अतिरिक्त इन्होंने नीति, स्तुति, ऋतु, आदि के बारे में भी लिखा। धर्मवर्द्धन की रचनाओं में धर्म-बावनी, कुंडलिया बावनी, छप्पय-बावनी, दृष्टान्त-छत्तीसी आदि प्रमुख हैं।

दौलत विजय (सं. 1700–1800)—इनकी महत्त्वपूर्ण कृति 'खुम्माण रास' है जिसकी रचना सं. 1767 के आसपास हुई। इसमें कुल 3576 छंद हैं तथा बप्पा रावल से लेकर महाराणा राजसिंह तक का उल्लेख है। यह वीर और शृंगार की सुन्दर कृति है।

विनय चन्द्र (रचनाकाल सं. 1725–1769)—ये सुकवि थे तथा इन्होंने अनन्य रचनाओं की रचना की थी। 'उत्तम कुमार चरित चौपाई' इनकी प्रबंधात्मक कृति है जिसमें प्रेम और सौन्दर्य का प्रभावशाली चित्रण हुआ है।

जयमल्लजी (सं. 1765–1853)—इनकी रचनाओं की संख्या भी काफी है जिन्हें नीति-उपदेशात्मक, स्तुति और आख्यान के रूप में बांट दिया है। अर्जुन माली, उदयी राजा, कार्तिक सेठ, तेतली पुत्र आदि इनकी प्रमुख काव्य रचनाएं हैं।

भीखणजी (सं. 1783–1860)—ये तेरापंथ (श्वेताम्बर) सम्प्रदाय के प्रवर्तक थे। इन्होंने सं. 1817 में तेरापंथ सम्प्रदाय की नींव डाली थी। भीखणजी ने धर्मग्रन्थों के वचनों की मौलिक और अनूठी व्याख्याएं प्रस्तुत की हैं। स्पष्टता और निर्भीकता इनके काव्य का प्रमुख गुण हैं। 'भिक्षु ग्रन्थ रत्नाकर' नाम से इनका काव्य दो खंडों में प्रकाशित हुआ है।

इस तरह मध्यकाल में अनेक जैन कवियों ने अपनी रचनाओं से राजस्थानी के विकास में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है।

रीति ग्रंथ एवं छंद-अलंकार—मध्ययुग में रीति ग्रंथों के अतिरिक्त छंद एवं अलंकारों के सम्बन्ध में कुछ रचनाएं प्राप्त होती हैं। इस सम्बन्ध में पहली पुस्तक

जैन कवि कुशललाभ की 'पिंगल शिरोमणि' दिखाई देती है। इसके बाद चारण कवि जोगीदास का 'हरि पिंगल प्रबंध' (रचना काल सन् 1664) और हमीरदान रतनू का 'पिंगल प्रकाश' 'लखपत पिंगल' और 'हमीर नाम माला' ग्रन्थ मिलते हैं। सेवग मनसा राम का 'रघुनाथ रूपक गीतां रो' इस परम्परा में एक प्रौढ़ कृति है जिसकी रचना सन् 1806 में हुई तथा इसमें डिंगल गीतों, छंदों एवं अलंकारों का अच्छा विवेचन हुआ है। आढ़ा किसना ने सन् 1824 में 'रघुवरजस प्रकास' लिखा और उदयराम ने 'कविकुल बोध' की रचना की। इन दोनों ग्रन्थों में भी डिंगल गीतों के प्रकार, छंद एवं अलंकारों के सम्बन्ध में उल्लेख मिलता है। इनके अलावा इस क्षेत्र में 'रूप दीप पिंगल' (हरिकिसन) छंद दिवाकर (सिढायच हरदान) 'डिंगल कोष' (मुरारिदान) आदि रचनाएं भी महत्त्वपूर्ण मानी जायेंगी।

गद्य साहित्य—राजस्थानी गद्य की परम्परा बहुत प्राचीन है। 'हिन्दी परिवार की भाषाओं में गद्य का उन्मेष कालक्रम से सर्वप्रथम राजस्थानी में प्राप्त होता है।'[1] प्रायः सभी विद्वान इस बात को मानते हैं कि राजस्थानी गद्य का प्रारम्भ तेरहवी शताब्दी के मध्य से हुआ। तब से लेकर आज तक राजस्थानी में गद्य की अविच्छिन्न परम्परा चली आ रही है। संवत् 1330 में लिखित 'आराधना' नामक टिप्पणी को पुरानी राजस्थानी गद्य का सर्वप्रथम नमूना माना जाता है। चौदहवीं शताब्दी में संग्रामसिंह रचित 'बाल शिक्षा' (सं. 1336) नवकार व्याख्यान (संवत् 1358) धर्मकथा आदि में गद्य के कुछ नमूने मिलते हैं लेकिन ये रचनाएँ छोटी हैं अतः गद्य की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण नहीं कही जा सकती। जैन साधुओं ने जैन धर्म के उपदेशों के प्रचारार्थ धर्म कथाएँ लिखी। गद्य के विकास में इन धर्म कथाओं की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है। ये कथाएँ जैन धर्म के ग्रन्थों की व्याख्याओं तथा उनमें प्रतिपादित सिद्धान्तों के उदाहरण रूप में लिखी गई हैं। ऐसी कहानियों वाली व्याख्याएँ बालावबोध नाम से प्रसिद्ध हुई। श्री नरोत्तम स्वामी और डॉ. हीरालाल माहेश्वरी के मतानुसार गद्य का प्रौढ़ रूप पन्द्रहवी शताब्दी में मिलता है तथा संवत् 1411 में लिखित आचार्य तरुणप्रभ सूरि का 'षड़ावश्यक-बालावबोध' राजस्थानी गद्य की सर्वप्रथम प्रौढ़ कृति है। इस तरह तरुणप्रभ राजस्थानी के पहले प्रौढ़ गद्यकार हैं।

मध्य युग में गद्य के विविध रूप दिखाई देते हैं जिनमें बालावबोध, टब्बा, मौक्तिक, कथा ग्रन्थ, चरित्र-ग्रन्थ, प्रश्नोत्तर, पट्टावली, नियम-पत्र, विहारपत्री, वचनिका, काव्यग्रन्थों गद्य, शिलालेख या ताम्रपत्र, पत्र तथा पट्टे परवाने, वात, ख्यात, पीढ़ियां-वंशावली आदि है।

इस युग में उपलब्ध गद्य साहित्य को अग्रलिखित रूप में विभाजित किया जा सकता है—

1. हिन्दी साहित्य का इतिहास : डॉ. नगेन्द्र, पृ. 273

1. धार्मिक गद्य
2. ऐतिहासिक साहित्य का गद्य
3. ललित गद्य

धार्मिक गद्य—जैसा कि उल्लेख किया जा चुका है राजस्थानी गद्य के विकास में जैन लेखकों का विशेष योग रहा है। जैन कवियों ने अपने धर्म के उपदेशों को लोकप्रिय बनाने के लिए गद्य में धर्म कथाएँ लिखी। इनमें बालावबोध तथा टब्बा प्रमुख हैं। धार्मिक गद्य लिखने वालों में आचार्य तरुणप्रभ सूरि, सोमसुन्दर सूरि, मेरुसुन्दर, पार्श्वचन्द्र, माणिक्य चन्द्र सूरि आदि प्रमुख हैं। माणिक्य चन्द्र सूरि का 'पृथ्वीचन्द्र चरित्र' (सं. 1470) इस शताब्दी के कलात्मक गद्य की श्रेष्ठ कृति है। इसका दूसरा नाम वाग्विलास भी है। इसमें भाषा संगीतमयी एवं तुकमय है तथा सर्वत्र काव्यात्मक गद्य का प्रयोग हुआ है।

ऐतिहासिक साहित्य का गद्य—ऐतिहासिक रचनाओं में प्राप्त गद्य इतिहास, संस्कृति और साहित्य की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है तथा यह भी कई रूपों में पाया जाता है। यथा—ख्यात, वात, विगत्, वचनिका दवावैत आदि। वचनिकाओं में शिवदास कृत 'अचलदास खीची री वचनिका' में गागरोनगढ़ के खीची (चौहान) वंशीय राजा अचलदास की वीरता का वर्णन है। इसकी रचना पन्द्रहवीं शताब्दी के चतुर्थ चरण में हुई। दूसरी वचनिका खिड़िया जग्गा की "राठोड़ रतनसी महेसदासोत री वचनिका" है जिसमें औरंगजेब और जसवन्तसिंह के बीच होने वाले युद्ध में राठौड़ रतनसिंह के वीरतापूर्ण युद्ध और मरण का वर्णन है। ये दोनों चंपू काव्य हैं अर्थात् इनमें गद्य के साथ पद्य मिला हुआ है। दवावैतों में भाट मालीदास कृत 'नरसिंह दास गौड़ री दवावैत' काफी प्रसिद्ध है जो अठारहवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में लिखी गई थी।

ऐतिहासिक साहित्य के गद्य का एक रूप ख्यात के रूप में भी मिलता है। बात किसी ऐतिहासिक घटना या व्यक्ति का संक्षिप्त इतिहास होता है तो ख्यात में या तो बातों का संग्रह होता है या पूर्णरूपेण इतिहास होता है। ख्यातकारों में मूंता नैणसी, बाँकीदास और दयालदास हैं। 'मूंता नैणसी री ख्यात' में राजस्थान के राजपूत राजाओं का इतिहास है। बाँकीदास री ख्यात' में 2500 से ऊपर बातों का संग्रह है। ये बातें नैणसी री ख्यात से भिन्न हैं तथा छोटी-छोटी टिप्पणी के रूप में हैं। इस ख्यात में राजस्थान से बाहर के राजपूत राजाओं, ठिकानदारों, मुसलमानों, मराठों और ओसवाल जातियों के इतिहास से सम्बन्धित सामग्री भी है। 'दयालदास री ख्यात' में बीकानेर के राठौड़ राजवंश का इतिहास है। राजस्थानी गद्य की दृष्टि से इन तीनों ख्यातों का विशिष्ट महत्त्व है क्योंकि इनमें प्रौढ़ गद्य के दर्शन होते हैं। इसी सन्दर्भ में 'दलपत विलास' नामक ग्रन्थ भी महत्त्वपूर्ण है।

ललित गद्य—ललित गद्य में वर्णनात्मक और कथात्मक बातें को ले सकते हैं। राजस्थानी का बात-साहित्य काफी समृद्ध है तथा ऐतिहासिक, पौराणिक,

काल्पनिक आदि कथानकों को लेकर ये वातें लिखी गई है। इनमें धर्म, नीति, प्रेम, हास्य आदि की सैकड़ों वातें उपलब्ध होती हैं। एक तरफ देवी-देवताओं और भूत-प्रेतों की कहानियां है तो दूसरी तरफ चोर-लुटेरों और डाकुओं की। राजस्थान में वात कहने की भी अपनी शैली है। ये वातें सरस, रोचक और मनमोहक हैं। कुछ वातें तो लोक कथाओं के साहित्यिक संस्करण जैसी प्रतीत होती हैं। कुछ प्रसिद्ध वातें इस प्रकार है—राजा भोज, माघ पंडित और डोकरी री वात, राजा भोज और खापरे चोर री वात, सयणी-चरणी री वात, फोफानंद री वात, जसमा ओडण री वात, चौबोली री वात, अचलदास खीची री वात, ऊमा भटियाणी री वात, मूमल महेन्दरे री वात, पलक दरियाव री वात आदि।

कलात्मक गद्य की रचनाओं मे 'खीची गंगेव नीवावत री दोपहरो' महत्त्वपूर्ण है। इनके अलावा 'राजान राववरो वात बणाव', सभा-श्रृंगार आदि विविध विषयक वर्णनों के सुन्दर संग्रह हैं। इन सभी संग्रहों मे तुकान्त गद्य का प्रयोग हुआ है।

इस तरह मध्ययुग मे जो गद्य मिलता है, उसके दो रूप है—तुकमय पद्याभास गद्य और तुकरहित शुद्ध गद्य। तुकमय गद्य की प्रवृत्ति राजस्थानी भाषा के प्रारम्भ में रही है।

लोक साहित्य—लोक साहित्य की दृष्टि से राजस्थानी भाषा काफी समृद्ध है। लोक साहित्य मौखिक परम्परा से प्राप्त साहित्य है। यह किसी व्यक्ति विशेष की रचना न होकर सम्पूर्ण जन-समुदाय या लोक की रचना होता है तथा मौखिक रूप मे पीढ़ी दर पीढ़ी चलता रहता है। लोक साहित्य के माध्यम से किसी भी जनपद या प्रदेश के लोक जीवन, लोक-संस्कृति और लोक-निर्माण के स्वाभाविक तथा सहज रूप को समझा जा सकता है। लोक साहित्य का वर्गीकरण निम्नलिखित रूप में किया जा सकता है—

1. लोकगीत
2. पवाड़ा
3. लोक कथाएं
4. ख्याल या लोक नाटक
5. लोकोक्तियां और पहेलियां।

लोक गीत—राजस्थानी लोकगीतों का अपना अलग संसार है। उनमें स्वाभाविकता, विविधता और लोकधुन की मनमोहकता है। राजस्थानी लोकगीतों को दो भागों में बांटा जा सकता है।

1. धार्मिक लोक गीत
2. मनोरंजनात्मक लोक गीत

धार्मिक लोक गीत—राजस्थानी लोकगीतों में धार्मिक विधि-विधानों एवं क्रिया-कलापो का भी चित्रण हुआ है। ऐसे लोक गीतों में संस्कार सम्बन्धी गीत,

देवी देवताओं के गीत और व्रत सम्बन्धी गीत देखे जा सकते हैं। संस्कार सम्बन्धी गीतों में जन्म-नामकरण, विवाह सम्बन्धी गीत हैं तो देवी देवताओं में लोकदेवता (रामदेव जी, पाबूजी, गूगोजी आदि) सीतला, मावल्यां, चारणदेवी आदि के गीत सम्मिलित हैं। 'हरजस' और 'सबद' भी लोकवाणी के रूप में प्रचलित हैं।

मनोरंजनात्मक गीत—ये ऐसे गीत हैं जो राजस्थान के तीज-त्यौहार, क्रीड़ाओं, ऋतुओं और मानव जीवन के अनेक सरस प्रसंगों से जुड़े हुए हैं। राजस्थान के त्यौहारों में गणगौर, तीज, दीपावली, होली आदि के गीत हैं तो क्रीड़ाओं में शिकार, फाग, झूला आदि के गीत हैं। इसी भांति खेती-बाड़ी करते समय ऋतुओं के अनुसार कृषकों के अपने गीत हैं। विभिन्न आमोद-प्रमोद के अवसरों पर गाये जाने वाले, दाम्पत्य प्रेम और घर-गृहस्थी के लोकगीतों का अपना एक अलग आकर्षण है।

विभिन्न राग-रागनियों पर आधारित लावणी, घूमर, मांड विशेष उल्लेखनीय हैं। ऋतुओं के गीतों में 'सावण रा गीत', 'फागण रा गीत' धमाल काफी लोकप्रिय हैं। अन्य गीतों में बच्चों के गीत, जुम्मे जागरण के गीत, दरबारी गीत, चरित गीत और पेशेवर गायक जातियों के गीत हैं। अपनी सरसता, मृदुता और मोहक धुन के कारण राजस्थानी लोकगीत महत्त्वपूर्ण माने जाते हैं। 'जीणमाता' और 'डूंगजी जुवार जी' का गीत जनसमाज में काफी लोकप्रिय है।

पवाड़ा—'पवाड़ा' संस्कृत के 'प्रवाद' शब्द से बना है। इसे अनेक विद्वानों ने लोकगाथा भी कहा है। इन पवाड़ों की अपनी कुछ विशेषताएं हैं यथा—रचयिता का अज्ञात होना, प्रामाणिक मूलपाठ का अभाव, संगीत और नृत्य का मेल, स्थानीयता की प्रचुरता, मौखिक परम्परा, लम्बा कथानक, टेकपदों की पुनरावृत्ति तथा अलंकृत शैली और उपदेशात्मक-प्रवृत्ति का अभाव।

राजस्थानी पवाड़ों में पाबूजी का पवाड़ा, बगड़ावत, निहालदे सुलतान आदि काफी प्रसिद्ध हैं। पाबूजी के पवाड़ों की संख्या 52 मानी जाती है। अपने अलौकिक चरित्र के कारण लोगों ने पाबूजी को लोकदेवता के रूप में मान लिया था। पाबूजी राठौड़ कुल में उत्पन्न प्रतापी धांधल जी के पुत्र थे। ये स्वयं दृढ़-प्रतिज्ञ, वीर योद्धा, शरणागत रक्षक और देवतुल्य पुरुष थे। देवल चारणी की पुकार पर गायों की रक्षा के लिए पाबूजी हथलेवा छुड़ाकर जायल खीचों से युद्ध करने के लिए चल दिये थे। अंत में इसी युद्ध में वे वीरगति को प्राप्त हुए। पाबूजी के पवाड़े लोक-काव्य की दृष्टि से बड़े मार्मिक एवं उत्कृष्ट हैं। भोपे 'पाबूजी री फड़' का प्रदर्शन करते हुए आज भी गांव-गांव में पाबूजी के पवाड़े गाते रहते हैं।

'बगड़ावतां रा पवाड़ा' भी इसी प्रकार काफी लोकप्रिय हैं तथा भोपे इस लोकगाथा को भी फड़ के साथ गाते हैं। इस लोकगाथा में बगड़ावतों के 24 भाइयों युद्धों का सजीव चित्रण हुआ है। अजमेर, भीलवाड़ा आदि क्षेत्रों में आज भी

यह गाथा लोकप्रिय है। रानी लक्ष्मीकुमारी चूंडावत ने 'देवनारायण की गाथा' नाम से इन पवाड़ों का सम्पादन किया है।

'निहालदे सुल्तान' भी राजस्थानी का अत्यन्त सरस लोक महाकाव्य है। लोक में यह 'निहालदे सुल्तान रा बावन पवाड़ा' के नाम से प्रसिद्ध है। प्रबंध रूप में इसकी कथा शेखावटी क्षेत्र में अधिक प्रचलित है। इसे जोगी सारंगी पर गाते है। डॉ. कन्हैयालाल सहल ने इस लोक महाकाव्य को लिपिबद्ध करके पुस्तक रूप में प्रस्तुत किया है।

लोक कथाएं—लोक कथा को राजस्थानी साहित्य में 'वात' कहा जाता है। गद्य के रूप में ख्यात, विगत, वचनिका आदि 'वात' से सर्वथा भिन्न हैं। विषयानुसार राजस्थानी लोककथाओं को शौर्य प्रधान प्रेम प्रधान, हास्य प्रधान, नीति प्रधान, निर्वेद प्रधान और कूतूहल प्रधान लोककथाओं के रूप में बांटा जा सकता है।

राजस्थानी साहित्य में शौर्य प्रधान लोक कथाओं की बहुलता है। ऐसी लोक कथाओं में 'राव रिणमल री वात' राजा नरसिंघ री वात, राव चूण्डे री वात; पाबूजी री वात आदि चर्चित हैं। अन्य लोक कथाओं में ढोला मारू, जलाल बूबना, मूमल महेन्द्र पोपाबाई री वात, बिणजारा-बिणआरी री वात, पदमं चारण री वात आदि काफी लोकप्रिय हैं। राजस्थानी लोककथाओं के सन्दर्भ में डॉ. कन्हैयालाल सहल, डॉ. मनोहर शर्मा, गोविन्द अग्रवाल, लक्ष्मी कुमारी चूण्डावत, विजयदान देथा आदि का कार्य उल्लेखनीय है।

ख्याल या लोकनाटक—राजस्थान में लोकनाटक के रूप मे अनेक ख्यालों का प्रदर्शन होता रहा है। ख्याल के लिए सिर्फ खुले मच की आवश्यकता है जिसके चारों तरफ दर्शक बैठ जाते हैं और फिर ख्याल शुरू होता है जो रात भर चलता है। इस ख्याल में काव्य, अभिनय, संगीत और नृत्य का समावेश होता है। ख्याल प्रधानतः गेय होते हैं लेकिन बीच-बीच में संवाद के रूप में गद्य का प्रयोग भी होता है। ख्याल वस्तुतः प्राचीन नाटय कला का ही प्रतिनिधित्व करते हैं। अगरचंद नाहटा के अनुसार राजस्थान में लिखित ख्यालों का प्रचार-प्रसार 19वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध या 20 वीं शताब्दी के प्रारम्भ में हुआ होगा।[1] उन्होंने 189 प्रकाशित ख्यालों की सूची भी प्रस्तुत की है।

ख्याल लिखने वालों में मोतीराम, पूनमचंद, नानूराणा, लच्छीराम आदि प्रमुख हैं। अलग-अलग अंचलों में इनको प्रस्तुत करने की शैली के आधार पर इन्हें चिड़ावाकेख्याल, कुचामणी ख्याल, मेवात के ख्याल, आदि के रूप मे विभाजित किया गया है। अमर सिंह चकवा बेण, जगदेव कंकाली, ढोला मरवण, नल दमयन्ती, मोर ध्वज आदि कुछ लोकप्रिय मंचीय ख्याल हैं।

1. प्राचीन काव्यों की रूप-परम्परा : अगरचंद नाहटा, पृ. 140।

लोकोक्तियां और पहेलियां—राजस्थानी में पारस्परिक बातचीत और लेखन में लोकोक्तियों और मुहावरों का प्रयोग भी होता रहता है। इनसे जहाँ भाषा में सौन्दर्य उत्पन्न होता है, वहीं अर्थ में भी नवीनता और चमत्कार पैदा होता है। राजस्थानी कहावतों और पहेलियों में राजस्थानी जन-जीवन और लोक संस्कृति का सजीव चित्रण उपलब्ध होता है। इस क्षेत्र में प्रो. नरोतम स्वामी, डॉ० कन्हैयालाल सहल आदि ने संग्रह एवं सम्पादन का कार्य किया है। डॉ० मनोहर शर्मा ने राजस्थानी कहावतों के पीछे प्रचलित कहानियों को भी लिपिबद्ध किया है। डॉ. कन्हैयालाल सहल का 'राजस्थानी कहावतें : एक अध्ययन' कहावतों के लिए पहला सर्वांगपूर्ण, आधारभूत एवं प्रामाणिक ग्रंथ है।

इस प्रकार लोक साहित्य की दृष्टि से राजस्थानी का साहित्य एक महत्त्वपूर्ण धरोहर के रूप में दिखाई देता है तथा इसके माध्यम से राजस्थान की लोक संस्कृति, मूल्य-मर्यादा और लोक जीवन का स्वाभाविक एवं यथार्थवादी रूप प्रस्तुत किया जा सकता है।

मूल्यांकन—मध्यकाल के राजस्थानी साहित्य पर विचार करने से प्रतीत होता है कि इस काल के साहित्य में कथ्य और शिल्प की विविधता रही है। इस काल में एक तरफ वीरता, भक्ति और श्रृंगार परक साहित्य की त्रिवेणी प्रवाहित हो रही है तो दूसरी तरफ गद्य का विकास हो रहा है। वीर रस से सम्बन्धित कृतियों में भक्ति, उदारता के साथ राष्ट्रीयता का चित्रण हुआ है। बांकीदास की रचनाओं में साम्प्रदायिकता, और प्रान्तीयता से ऊपर उठकर राष्ट्रीय उद्बोधन का स्वर है। मातृभूमि के लिए त्याग, बलिदान और सर्वस्व-अर्पण की भावना से ओतप्रोत मध्यकाल का साहित्य वीर रस की प्रेरणादायी विरासत है।

वीर रस के साथ श्रृंगार का समन्वय राजस्थानी साहित्य की अपनी विशिष्टता रही है। इस काल के साहित्य में श्रृंगार रस की श्रेष्ठ कृतियां दिखाई देती हैं। इसी भांति भक्ति के क्षेत्र में ईश्वर के सगुण और निर्गुण रूप को लेकर काफी रचनाएँ लिखी गई। इस समय संत कवियों के अनेक सम्प्रदाय भी प्रचलित थे। मीराबाई जैसी सुप्रसिद्ध भक्त कवयित्री भी मध्ययुग की ही देन है।

मध्यकाल में लौकिक काव्य के रूप में काफी प्रेमाख्यान उपलब्ध होते हैं जो अपनी सरसता, मार्मिकता और भाव-गाम्भीर्य के कारण काफी लोकप्रिय रहे हैं। 'ढोला-मारू रा दूहा' श्रृंगार काव्य का ऐसा ही लोकप्रसिद्ध प्रेमाख्यान है।

पद्य के साथ-साथ इस काल में गद्य का उन्मेष भी हिन्दी परिवार की भाषाओं में सबसे पहले राजस्थानी में ही दिखाई देता है। राजस्थानी गद्य का प्रारम्भ तेरहवीं शताब्दी के मध्य से हुआ और तब से लेकर आज तक गद्य की अविच्छिन्न परम्परा दिखाई देती है। गद्य के विविध रूप भी राजस्थानी साहित्य की अपनी विशिष्टता है। गद्य के क्षेत्र में जैन कवियों का योगदान महत्त्वपूर्ण माना जायेगा। ललित गद्य

के रूप में राजस्थानी का बात साहित्य विविधता के लिए उल्लेखनीय है। गद्य के विविध रूपों में बालावबोध, टब्बा, प्रोक्तिक, कथा-ग्रंथ, वचनिका आदि हैं। इसी भांति प्रस्तुत काल में पद्य की दृष्टि से प्रबंध काव्य, खंडकाव्य, मुक्तक आदि विविध काव्य-विधाओं की प्रचुरता रही। मध्यकाल की उल्लेखनीय कृतियों में 'कान्हड़दे प्रबंध', 'हम्मीरायण', 'हाला झालारी कुंडलियां' 'विरुद्ध छिहतरी', वचनिका राठौड़ रतनसिंह महेसदासोतरी 'चेतावणी का गीत' 'वेलि क्रिसन रुकमणी री', 'रामरासो', 'नागदमण', 'राजिया रा सोरठा' 'मीराबाई की पदावली' 'ढोलामारू रा दूहा', 'निहालदे सुलतान,' 'बगड़ावत' आदि हैं। छंद वैविध्य भी इस युग की कृतियों में मिलता है।

इस प्रकार नये काव्य-विषयों और शिल्पगत विविधता की दृष्टि से मध्यकाल की देन निर्विवाद है। आरम्भ काल की तुलना में इस काल में रचनात्मक भूमि का अधिक विस्तार हुआ है।



अध्याय-4

आधुनिक काल : (सन् 1850 से अब तक)

आधुनिक काल का आरम्भ 19वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध से माना जा सकता है ।[1] क्योंकि इस काल खंड से रचनात्मक स्तर पर कथ्यगत चेतना में बदलाव प्रारम्भ हो जाता है । इस समय की राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक परिस्थितियों की उथल-पुथल से जिस नवीन परिवेश की शुरुआत हुई, वह साहित्य के लिए एक नया सन्दर्भ था । 18वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में मुगलों की केन्द्रीय शक्ति के पतनोन्मुख होने पर अंग्रेजों की शक्ति का विकास होने लगा था । राजस्थान में राजपूत शासकों की शक्ति इतनी क्षीण हो गई कि वे अपने सामन्तों को नियन्त्रित करने में असमर्थ थे फलतः सन् 1818 में उन्होंने ब्रिटिश संरक्षण को स्वीकार कर लिया जिसके परिणामस्वरूप राजपूत नरेशों की बाह्य स्वतन्त्रता समाप्त हो गई । राजपूत नरेशों ने अपनी आर्थिक स्थिति को सुधारने के लिए, अपने अधीन सामन्तों से अधिक से अधिक धन वसूल करना शुरू कर दिया जिसके कारण राज्यों में अव्यवस्था फैल गई और सामन्तों ने अपने शासकों के विरुद्ध विद्रोह प्रारम्भ कर दिया । ऐसी स्थिति में राजपूत नरेशों ने ब्रिटिश कम्पनी की सहायता से इन सामन्तों को कुचलने का प्रयास किया तो दूसरी तरफ ब्रिटिश कम्पनी को आन्तरिक मामलों में हस्तक्षेप तथा प्रशासन पर नियन्त्रण करने का अवसर प्राप्त हो गया । अंग्रेजों की इस कार्यवाही के प्रति भारतीय जनता में गहरा असंतोष एवं आक्रोश व्याप्त होता जा रहा था जो सन् 1857 में विप्लव के रूप में ब्रिटिश सत्ता के विरुद्ध भड़क उठा ।

जब उत्तर भारत में अंग्रेजों के विरुद्ध विद्रोह उत्पन्न हुआ तो राजस्थान में सबसे पहले नसीराबाद में इसका सूत्रपात हुआ और तत्पश्चात् इस विद्रोह की लपटें

---

1. राजस्थानी भाषा और साहित्य : डॉ मोतीलाल मेनारिया, पृ. 314
— राजस्थानी सबद-कोस : सीताराम लालस, (प्रथम खंड) पृ. 172
— History of Rajasthan Literature : Dr H. L. Maheshwari, p. 20
— आधुनिक राजस्थानी साहित्य : डॉ. शान्तिलाल भारद्वाज राकेश, पृ. 18

नीमच, जोधपुर, मेवाड़ और कोटा आदि रियासतों में फैल गई। भरतपुर, अलवर, धौलपुर, टोंक आदि स्थानों पर तो इस विद्रोह ने विकराल रूप धारण कर लिया लेकिन अंग्रेजों की सैनिक कार्यवाही ने इस विद्रोह को दबा दिया और 1857 की क्रान्ति असफल हो गई। भारत में अब ईस्ट इण्डिया कम्पनी का शासन समाप्त हो गया और इंगलैण्ड के ताज के नाम से वहाँ का मन्त्रिमण्डल भारत पर शासन करने लगा।

इस विप्लव का स्वरूप कुछ भी माना जाय, इतना निश्चित है कि राजस्थान में विप्लवकारियों का दृष्टिकोण ब्रिटिश विरोधी था और इसका समर्थन यहाँ के तत्कालीन कवियों ने भी किया था। बाँकीदास, सूर्यमल्ल मिश्रण, शंकरदान सामौर, बुढजी आसिया, गिरवरदान कवैया आदि कवियों ने ब्रिटिश सत्ता के खिलाफ आक्रोश और उत्तेजना पैदा करने में अपने ओजस्वी स्वर का परिचय दिया। बठोठ-पाटोदा के डूंगजी-जवाहरजी ने अंग्रेजों के विरुद्ध में तहलका मचा दिया और जगह-जगह लूटपाट की। आज भी डूंगजी-जवाहरजी के गीत (छावली) भोपा-भोपी गर्व से गाते हैं।

इससे प्रतीत होता है कि 1850 के आसपास की समसामयिक घटनाओं, बदलती परिस्थितियों और जन-चेतना के आगरूक आयामों ने आधुनिकता की प्रक्रिया को जन्म दे दिया था। अंतः हम आधुनिक काल का उप विभाजन इस प्रकार कर सकते हैं—

1. जागरणकाल (सन् 1850 से 1947 तक)
2. स्वातन्त्र्योत्तरकाल (सन् 1947 से 1965 तक)
3. नवलेखनकाल (सन् 1965 से अब तक)

अब हम पहले सन् 1857 से लेकर सन् 1947 तक के राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक परिवेश का विवेचन करेंगे और तत्पश्चात् स्वातन्त्र्योत्तर परिवेश का।

राजनीतिक परिवेश—आधुनिककाल की शुरुआत सन् 1850 से मानते हैं। राजनीतिक दृष्टि से यह उथल-पुथल का काल था सन् 185[illegible] के विप्लव के कारण ईस्ट इण्डिया कम्पनी का प्रभुत्व समाप्त हो गया और भारत ब्रिटिश साम्राज्य का उपनिवेश बन गया। इस नवीन परिस्थिति के कारण जहाँ एक तरफ भावात्मक संगठन और एकता के वातावरण में सक्रियता आई, वहीं अंग्रेजों की नयी नीति ने नयी चेतना और नये सोच को पैदा किया।

सन् 1885 में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना हुई और जन-साधारण में इसका प्रभाव बढ़ा। आगे चलकर कांग्रेस में नरम और गरम विचारों के आधार पर दो वर्ग भी बन गये। 1903 ई. में दिल्ली दरबार और 1905 ई. में बंग-भंग की घटनाओं ने राजनीतिक क्षेत्र में काफी हलचल पैदा कर दी। दूसरी तरफ भारत-वासियों में देश की आजादी के लिए त्याग, बलिदान और संघर्ष का भाव उत्तरोत्तर

बढ़ने लगा। 1905 ई. में जापान ने रूस जैसे शक्तिशाली राष्ट्र को पराजित कर दिया जिसकी प्रेरणा भारतवासी लोगों को भी मिली। प्रथम विश्व युद्ध (1914 ई.) के पश्चात् अंग्रेजों ने बढ़ती हुई जन-चेतना को कुचलने का हर सम्भव प्रयास किया लेकिन देश के अग्रणी नेताओं गाँधी, तिलक आदि के कारण स्थिति सुदृढ़ होती गई। अंग्रेजों की दमन-नीति को देखकर गाँधीजी ने असहयोग आन्दोलन (1920-21 ई.) शुरू किया। इन घटनाओं और परिवर्तनशील स्थितियों के कारण देशवासियों में आत्म सम्मान का भाव जागृत हुआ। ब्रिटिश सरकार की दमनकारी नीति के फलस्वरूप निरंकुश राजशाही के विरुद्ध भी आवाज उठने लगी और राजस्थान में भी क्रान्ति की भावनाएँ सक्रिय हो गईं। कोटा के केसरीसिंह बारहठ, जोरावरसिंह, प्रतापसिंह, खरवा के गोपालसिंह, ब्यावर के दामोदरप्रसाद राठी और विजयसिंह पथिक ने क्रान्तिकारी आंदोलन को राजस्थान में गति प्रदान की लेकिन बाद में वे सभी क्रान्तिकारी गिरफ्तार हो गये। इस समय की दो महत्वपूर्ण घटनाओं में बिजोलिया और बेगू के किसानों का आन्दोलन भी उल्लेखनीय कहा जायेगा जिन्होंने जागीरदारी अत्याचारों एवं शोषण के विरुद्ध में आवाज उठाई। जयनारायण व्यास, हीरालाल शास्त्री, माणिक्यलाल वर्मा, हरिभाऊ उपाध्याय, सागरमल गोपा आदि 1930 ई. के आसपास के प्रमुख नेता थे जिन्होंने पराधीनता के खिलाफ में आवाज उठाई और आजादी के संघर्ष को गाँव-गाँव तक पहुँचाया। जयनारायण व्यास, गणेशीलाल व्यास, उस्ताद, सुमन जोशी जैसे कवियों ने ओजस्वी रचनाओं के माध्यम से जन-जागृति में महत्वपूर्ण योगदान दिया।

द्वितीय विश्व युद्ध के पश्चात् राजनीतिक क्षेत्र में काफी परिवर्तन हुआ। 1942 ई. में 'भारत छोड़ो' आन्दोलन का नारा दिया गया और 'आजाद हिन्द फौज' के गठन से राष्ट्रीय चेतना का संचार हुआ। अंततः 15 अगस्त, 1947 ई. को देश ने आजादी प्राप्त की।

सामाजिक एवं धार्मिक परिवेश—राजनीतिक हलचलों के साथ-साथ इस काल में सामाजिक एवं धार्मिक दृष्टि से भी कुछ ऐसे आन्दोलन उत्पन्न हुए जिन्होंने समाज और धर्म को एक नयी चेतना प्रदान की। ब्रिटिश राज्य में आधुनिकरण की जो प्रक्रिया प्रारम्भ हुई उसने सामाजिक मान्यताओं एवं धार्मिक चिंतन को नये रूप में परिवर्तित करने की कोशिश की। ब्राह्म समाज, प्रार्थना समाज और आर्य समाज ने देश के सुदूर कोनों में अपनी विचारधारा को फैलाया। 1828 ई. में राजाराममोहन राय ने ब्राह्म समाज की स्थापना की और इसके माध्यम से धर्म और समाज की कई कुरीतियों पर तीखा प्रहार किया, इनमें सती प्रथा, विधवा-विवाह आदि प्रमुख थी। 1867 ई. में केशवचन्द्र सेन ने प्रार्थना समाज की स्थापना की और सामाजिक रूढ़ियों तथा अंधविश्वासों के विरुद्ध गहरा संघर्ष किया। 1867 ई. में ही दयानन्द सरस्वती ने बम्बई में आर्य समाज की स्थापना की तथा सामाजिक

एवं नैतिक मूल्यों के लिए एक आचार-संहिता बनाई। इन आन्दोलनों का राजस्थान की सामाजिक और धार्मिक स्थिति पर गहरा प्रभाव पड़ा स्वामी दयानन्द सरस्वती, और विवेकानन्द ने रियासतो में घूम-घूम कर सामाजिक सुधारो के लिए काफी प्रयत्न किया फलतः बाह्याडम्बरों और पाखंडों के प्रति जागरूकता उत्पन्न हुई। सामाजिक जीवन मे बाल-विवाह, कन्या-विक्रय, पर्दा-प्रथा अशिक्षा जैसी अनेक कुरीतियां फैली हुई थी, जिनमें नवयुग की चेतना से काफी सुधार हुआ। सुधारवादी विचारों का प्रभाव कई कवियों की काव्य-चेतना पर भी पड़ा और उन्होंने ऐसे सुधारवादी गीत भी लिखे।

आर्थिक क्षेत्र में भी काफी परिवर्तन हो रहा था। देश की आर्थिक व्यवस्था काफी छिन्न-भिन्न हो रही थी। लोगों में असन्तोष फैलता जा रहा था तो दूसरी तरफ औद्योगिक विकास की गति अवरुद्ध हो गई थी जिससे गरीबी, महंगाई आदि समस्याएँ फैल रही थी।

सांस्कृतिक परिवेश—अंग्रेजों के अधीन रहने के कारण देशवासी पाश्चात्य सभ्यता और संस्कृति के संपर्क में आये जिसके कारण आधुनिकता का संचार हुआ और सांस्कृतिक स्तर पर भी बदलाव आया। अंग्रेजों की नयी अर्थव्यवस्था, नयी शिक्षा नीति, यातायात के साधन आदि ने विचारों में भी परिवर्तन उपस्थित किया और इससे सांस्कृतिक चेतना का नवीनीकरण हुआ। प्रारम्भ में तो लोगों में अपनी संस्कृति के प्रति अगाढ़ श्रद्धा थी लेकिन धीरे-धीरे पाश्चात्य सभ्यता और संस्कृति का व्यामोह बढ़ता गया और लोग पाश्चात्य संस्कृति को अपनाने में गौरव महसूस करने लगे। समाज का उच्चवर्ग उस समय पाश्चात्य संस्कृति का भक्त बना हुआ था।

औद्योगिक क्रान्ति, सांस्कृतिक चेतना और पाश्चात्य साहित्य का प्रभाव जन मानस पर दिन प्रतिदिन बढ़ता जा रहा था जिससे भारतीय जीवन के आचार-विचार और सोच मे काफी परिवर्तन नजर आने लगा। अंग्रेजी और बंगला साहित्य का प्रभाव भी तत्कालीन साहित्यिक चेतना मे आया जिसके कारण साहित्य के कथ्य और शिल्प मे परिवर्तन उपस्थित हुआ।

इस तरह 1850 ई. से 1947 ई. तक की राजनीतिक सामाजिक और सांस्कृतिक परिस्थितियों ने साहित्य की रचनात्मक चेतना को प्रभावित किया और उसके अनुरूप साहित्य लिखा गया।

काव्य—जागरणकाल की परिस्थितियों ने एक तरफ राष्ट्रीय चेतना को उद्बुद्ध किया तो दूसरी तरफ समसामयिक जीवन बोध के सामने ऐसी चुनौतियां उपस्थित की, जिनके कारण आधुनिकता की प्रक्रिया अपने हिसाब से गतिशील बनी रही। राजस्थानी भाषा के कवियो ने इन विकट परिस्थितियों मे अपनी जागरूकता और कर्तव्यनिष्ठा का परिचय दिया। सूर्यमल्ल मिश्रण और शंकरदान सामौर इस काल के दो विशिष्ट कवि कहे जायेंगे, जिन्होंने 1857 ई. की ...

युग कवि की भूमिका निभाई। इस काल के अन्य कवियों की कविता परम्परागत काव्य के अन्तर्गत मानी जायेगी। यहां सबसे पहले सूर्यमल्ल मिश्रण और शंकरदान सामोर के काव्य का परिचय प्रस्तुत है—

सूर्यमल्ल मिश्रण—सूर्यमल्ल मिश्रण विलक्षण प्रतिभा, वैदुष्य और पांडित्य के धनी थे। चारणकुल के महान कवि के रूप में उनकी ख्याति है। इसमें कोई सन्देह नहीं सूर्यमल्ल मिश्रण जैसे महान कवि कई शताब्दियों बाद पैदा होते हैं। सूर्यमल्ल का जन्म सं. 1872 में बूंदी में हुआ। आप बूंदी नरेश महाराव रामसिंह के राज्याश्रित कवि थे। सूर्यमल्ल की रचनाओं में वंश भास्कर, वीर सतसई, बलवद् विलास, रामरंजाट, छंदोमयूख आदि प्रमुख हैं।

'वंशभास्कर' आपका सबसे बड़ा और प्रसिद्ध ग्रन्थ है जिसकी रचना 1840 ई. में हुई। यह बूंदी राज्य का पद्यात्मक इतिहास है। इसे महाभारत के समान एक विश्वकोषीय ऐतिहासिक काव्य की संज्ञा भी दी गई है।[1] सूर्यमल्ल का विशद ज्ञान, अपार शब्द भंडार और अनेक भाषाओं की जानकारी 'वंशभास्कर' ग्रन्थ से प्रमाणित होती है। ऐतिहासिक दृष्टि से 'वंशभास्कर' महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है इसकी भाषा पिंगल है।

सूर्यमल्ल का दूसरा ग्रन्थ 'वीर सतसई' है जिसमें कुल 288 दोहे हैं और यह वीर रसात्मक दोहों से परिपूर्ण डिंगल की की अनुपम कृति है। सूर्यमल्ल ने इन दोहों में राजस्थान के मध्ययुगीन जीवनादर्शों को नये सन्दर्भ में प्रस्तुत किया है। शौर्य, त्याग, बलिदान, धरती प्रेम आदि उदात्ततम जीवन मूल्यों की गौरवमयी परम्पराओं को 'वीर सतसई' में सफल रूप में अभिव्यक्त किया है। 'वीर सतसई' काव्य की रचना के पीछे 1857 ई. की राज्य क्रान्ति की प्रेरणा रही है। 'वीर सतसई' भारत के इतिहास की एक महान घटना (स्वातन्त्र्य संग्राम) का काव्यमय उद्गार है।'[2] इस क्रान्ति की ओर संकेत करते हुए वीर-सतसई में लिखा है—

बीकम बरसां बीतियो, गण चो चंद गुणीस।
बिसहर तिथ गुरु जेठ वदि, समय पलट्टी सीस॥

'बलवद् विलास' चरित काव्य है जिसमें रतलाम के महाराजा बलवंतसिंह का चरित्र-वर्णन है। इसमें कुल 584 छद है। 'रामर' जाट सूर्यमल्ल की प्रारम्भिक रचना है जब उनकी उम्र 10 वर्ष की थी। यह 145 छन्दों की कृति है।

इस तरह सूर्यमल्ल मिश्रण आधुनिक काल के प्रथम एवं डिंगल परम्परा के अन्तिम कवि हैं। वीर रस के सर्वश्रेष्ठ कवि के रूप में सूर्यमल्ल मिश्रण की ख्याति अतुलनीय है। आपकी मृत्यु सं. 1920 में हुई।

---

1. सांस्कृतिक राजस्थान : सं. रतनशाह, पृ. 38
2. वीर सतसई : सं. डॉ. सहल एवं गौड़, पृ. 74

शंकरदान सामौर (सं 1881–1935)—अंग्रेजी शासन के अत्याचार और अनाचारपूर्ण रवैये की तीखी भर्त्सना करने वाले आधुनिक काल के कवियों में शंकरदान सामौर अग्रणी माने जायेंगे। आपका जन्म वि. सं. 1881 में चूरू जिले की सुजानगढ तहसील के वोबासर गांव में हुआ। सामान्य चारण परिवार में जन्में सामौर की कविता असाधारण थी। ब्रिटिश सत्ता के खिलाफ आग उगलने वाले राजस्थान के कवियों में शंकरदान के मुकाबले का दूसरा कवि नहीं है। उन्होंने एक तरफ अंग्रेजी राज्य में फैले अन्याय, शोषण, भ्रष्टाचार और अनीति का तीखे स्वर में विरोध किया तो दूसरी तरफ यहां के जागीरदारों और ठाकुरों की निष्क्रियता का चित्रण करते हुए उन्हें अंग्रेजी सत्ता के खिलाफ जूझने के लिए ओजस्वी स्वर में प्रोत्साहित किया। शंकरदान की आवाज में निर्भीकता और क्रान्ति की तेजोमय आग थी।

शंकरदान प्रगतिशील विचारधारा के प्रथम कवि कहे जा सकते हैं। उनके काव्य में शोषित, पददलित और उपेक्षित वर्ग का यथार्थवादी चित्रण है तथा मौजूदा व्यवस्था पर तीखा व्यंग्य है।

सगती सुजस, भागीरथी महिमा वखतरो वायरो, देस दर्पण, साकेत सतंक आदि शंकरदान की प्रमुख रचनाएँ हैं और ये सभी मुखश्रुति से प्राप्त हुई हैं। अंग्रेजों की साम्राज्यवादी नीति की तरफ संकेत करते हुए शंकरदान कहते हैं—

महलज लूटण मोकला, चढया सुण्या चिंगेज।
लूटण भूपा लालची, आया बस इंगरेज॥

प्रसाद और ओज गुण सम्पन्न शंकरदान सामौर की भाषा में सहज लालित्य है।

इससे प्रकट होता है कि सूर्यमल्ल मिश्रण और शंकरदान सामौर जागरण काल के दो विशिष्ट कवि थे जिन्होंने तत्कालीन परिस्थितियों में जन-मानस में राष्ट्रीय भावना के बीज-वपन करने का महत्वपूर्ण कार्य किया। इस काल में इन दो कवियों के अतिरिक्त शेष काव्य परम्परागत शैली में लिखा गया जिसमें किसी एक प्रवृत्ति की प्रधानता नहीं दिखाई देती है।

परम्परागत काव्य—पारम्परिक शैली में रचित काव्य और उनके कवियों का परिचय इस प्रकार है—

रामनाथ कविया (1801–1879 ई.)—अपनी प्रसादमय शैली के कारण रामनाथ कविया राजस्थानी भाषा के लोकप्रिय कवि रहे हैं। आपकी रचनाओं में 'पाबूजी रा सोरठा' और द्रौपदी विजय या 'करुण बहत्तरी' है। 'करुण बहत्तरी' में दुःशासन द्वारा द्रौपदी का चीर हरण करने पर द्रौपदी की कृष्ण को की गई करुण पुकार का मार्मिक चित्रण है। इसके अतिरिक्त आपने चारण देवी करणी जी की महिमा और कुछ प्रमुख चरित नायकों के बारे में भी कविता लिखी है यथा पाबूजी,

सूर्यमल्ल मिश्रण और शंकरदान सामौर की मृत्यु के बारे में आपने कुछ कवित्त लिखे हैं।

स्वरूप दास (1801–1863 ई.)—स्वरूपदास का जन्म चारण परिवार में हुआ था लेकिन बाद में दादू सम्प्रदाय में दीक्षा लेकर दादू पंथी साधु हो गये। संस्कृत, पिंगल, डिंगल आदि भाषाओं के विद्वान थे तथा रतलाम, सीतामऊ आदि दरबारों में इनका अच्छा मान-सम्मान था। आपकी लिखी हुई रचनाओं में रत्नाकर, पाखंड खंडन, वर्णनार्थ मंजरी, दृष्टान्त दीपिका, वृत्तिबोध, पांडव यशेन्दु चन्द्रिका आदि प्रमुख है। इनमें पांडव यशेन्दु चन्द्रिका विशेष ख्याति प्राप्त रचना है जिसमें महाभारत को सार रूप में प्रस्तुत किया गया है।

राव बख्तावर (1813–1894 ई.)—ये टाक शाखा के राव थे इनका जन्म मेवाड़ के बसी गांव में हुआ था बाद में ये उदयपुर के महाराणा स्वरूप सिंह के दरबारी कवि हो गये और उनकी तीन पीढ़ियों तक सम्मान प्राप्त करते रहे। इन्होंने केहर प्रकाश, रसोत्पत्ति, स्वरूप-यश-प्रकाश, शम्भु यश-प्रकाश आदि ग्रंथों की रचना की जिनमें 'केहर प्रकाश' इनकी सर्वश्रेष्ठ कृति है। इसमें लगभग 1486 छंद हैं और भाषा राजस्थानी है।

समान बाई (1825–1885 ई.)—समान बाई ख्याति प्राप्त कवि रामनाथ कविया की सुपुत्री थी। आप भक्त कवयित्री के रूप में प्रसिद्ध हैं। आपने राम और कृष्ण लीला के सम्बन्ध में पद लिखे है। आपकी कृतियों में ईदा महिमा, राधिका शरीरोपमा, श्री कृष्णोपमा, पतित पत्रोपमा आदि मुख्य है। आपने राजस्थानी के अलावा ब्रजभाषा मे भी पद लिखे हैं।

कविया चिमनजी (1833–1887 ई.) चारण काव्य की दृष्टि से कविया चिमन जी का महत्त्वपूर्ण स्थान है। वे सुयोग्य कवि एव विद्वान थे। आपने ऐतिहासिक-वीररसात्मक, भक्तिपरक एवं छंदशास्त्रीय विषयो पर कुल मिलाकर 21 ग्रंथो की रचना की। आपके काव्य में चारण काव्य की सभी परम्परागत शैलियों के दर्शन होते है। 'सोढायण' आपकी प्रसिद्ध काव्य कृति है जिसमे सोढा राजपूतों के वीरत्व एव शौर्य का प्रभावशाली वर्णन किया गया है।

शिवबक्स पालावत (1844–1899 ई.)—शिवबक्स पालावत अलवर के महाराजा मंगलसिंह के राजदरबारी कवि थे। 'अलवर की षट्ऋतु कमाल' आपकी साहित्यिक काव्य कृति है। इसमें षट्ऋतु के माध्यम से महाराजा के क्रिया-कलापों एवं लोक जीवन का सुन्दर चित्रण किया गया है।

ऊमरदान लालस (1851–1903 ई.)—ऊमरदान लालस का जन्म जोधपुर जिले के ढाढरवाड़ा ग्राम में हुआ था। बाल्यावस्था मे माता-पिता का देहान्त हो जाने के कारण ये रेड़प्पा के रामस्नेही सम्प्रदाय मे दीक्षित हो गये। बाद मे स्वामी दयानंद सरस्वती के उपदेशों से प्रभावित होकर पुनः गृहस्थी हो गये। आपकी

कविताओं का संग्रह 'ऊमर काव्य' नाम से प्रकाशित हुआ है। आर्य समाज से प्रभावित होने के कारण आपने सामाजिक कुरीतियों एवं पाखंडों पर तीखा व्यंग्य किया है। आपकी भाषा सरल बोलचाल की होते हुए भी प्रभावशाली है।

सुधारवादी दृष्टिकोण के कारण 'दारु रा दोस' अबार को हाल, विभिचार री बुराई, अमल रा ओगण, तमाखू की ताड़न, धर्म कसौटी आदि रचनाएं काफी लोकप्रिय हैं। इसमें कोई संदेह नहीं लालस का काव्य परम्परागत काव्य शैली से बिल्कुल भिन्न था जिसमें जन-जागृति का स्वर प्रधान था।

महाराज चतुरसिंह (1879–1929 ई.)—सहज सरल प्रकृति के अनुरूप महाराज चतुरसिंह सहृदयी कवि थे। आप मेवाड़ मे करजाली के स्वामी महाराज सूरतसिंह के वंशज थे। आपका जीवन एक योगी और भक्त व्यक्ति जैसा था क्योंकि पत्नी के देहान्त के बाद आपने उदयपुर शहर के बाहर एक गांव के पास कुटिया बनाकर साधु जीवन व्यतीत किया। आपने 18 ग्रंथों की रचना की, जिनमें भगवत गीता की गंगाजली टीका, परमार्थ विचार, योगसूत्र की टीका, अलख पचीसी, चतुर-चिंतामणि, अनुभवप्रकाश, चतुर प्रकाश आदि प्रमुख है। आपने राजस्थानी एवं व्रज दोनों भाषाओं में काव्य रचना की। भाव प्रवणता, मौलिकता और स्वाभाविकता आपके काव्य की प्रमुख विशेषताएं हैं। मेवाड़ में मीरां के बाद लोकप्रिय कवियों मे दूसरा स्थान महाराज चतुरसिंह का है।

मोड़सिंह महियारिया (1861 ई.)—मोड़सिंह महियारिया चारण काव्य के प्रमुख कवि थे आपने सूर्यमल्ल मिश्रण की अधूरी वीर सतसई को पूरा करने के लिए 453 दोहे और लिखे लेकिन वे भाव व्यंजना की दृष्टि से उतने प्रभावशाली नहीं हैं क्योंकि सूर्यमल्ल की तुलना में महियारिया सामान्य प्रतिभा के कवि थे।

हिंगलाजदान कविया (1861–1948 ई.)—चारणशैली के प्रभावशाली कवि हिंगलाजदान कविया का जन्म जयपुर के निकट सेवापुरा गांव में हुआ। आपकी रचनाओं में मृगया मृगेन्द्र, प्रत्यय पयोधर, साल गिरह शतक, मेहाई महिमा, दुर्गा बहत्तरी, माखेट अपजस वाणिया रासो आदि प्रसिद्ध हैं। आपने करणी जी एवं इन्द्रबाई की स्तुति भी लिखी है। हिंगलाजदान कविया डिंगल के उद्‌भट्ट विद्वान थे। भाषा पर आपका अच्छा अधिकार था।

केशरीसिंह बारहठ (1871–1941 ई.)—केशरीसिंह बारहठ प्रसिद्ध क्रांतिकारी और देशभक्त कवि थे। इनके सम्पूर्ण परिवार ने देश को आजादी के लिए बलिदान किया। प्रताप चरित्र, राजसिंह चरित्र, दुर्गादास चरित्र, जसवन्तसिंह चरित्र और रूठी राणी आपके प्रमुख काव्य ग्रंथ है। मेवाड़ के महाराणा फतेहसिंह को सम्बोधित करके आपने 'चेतावणी रा चूंगट्या' (13 सोरठे) लिखे जो काफी चर्चित रहे। वीर रस का ओजस्वी वर्णन आपके काव्य की प्रमुख विशेषता है।

उदयराज ऊजल (1885–1967 ई.)—परम्परागत काव्यशैली के सुयोग्य कवि और चारण साहित्य के प्रसिद्ध विद्वान उदयराज ऊजल का जन्म मारवाड़ में

सूर्यमल्ल मिश्रण और शंकरदान सामौर की मृत्यु के बारे में आपने कुछ मरसिये लिखे हैं।

स्वरूप दास (1801–1863 ई.)—स्वरूपदास का जन्म चारण परिवार में हुआ था लेकिन बाद में दादू सम्प्रदाय में दीक्षा लेकर दादू पंथी साधु हो गये। ये संस्कृत, पिंगल, डिंगल आदि भाषाओं के विद्वान थे तथा रतलाम, सीतामऊ आदि दरबारों में इनका अच्छा मान-सम्मान था। आपकी लिखी हुई रचनाओं में रस-रत्नाकर, पाखड खंडन, वर्णनार्थ मंजरी, दृष्टान्त दीपिका, वृत्तिबोध, पांडव यशेन्दु चन्द्रिका आदि प्रमुख है। इनमें पांडव यशेन्दु चन्द्रिका विशेष ख्याति प्राप्त रचना है जिसमें महाभारत को सार रूप में प्रस्तुत किया गया है।

राव बख्तावर (1813–1894 ई.)—मेंटाक शाखा के राव थे इनका जन्म मेवाड़ के बसी गांव मे हुआ था बाद में ये उदयपुर के महाराणा स्वरूप सिंह के राज दरबारी कवि हो गये और उनकी तीन पीढ़ियों तक सम्मान प्राप्त करते रहे। इन्होंने केहर प्रकाश, रसोत्पत्ति, स्वरूप-यश प्रकाश, शंभु यश प्रकाश आदि 11 ग्रंथों की रचना की जिनमें 'केहर प्रकाश' इनकी सर्वश्रेष्ठ कृति है। इसमे लगभग 1486 छंद हैं और भाषा राजस्थानी है।

समान बाई (1825–1885 ई.)—समान बाई ख्याति प्राप्त कवि रामनाथ कविया की सुपुत्री थी। आप भक्त कवयित्री के रूप में प्रसिद्ध हैं। आपने राम और कृष्ण लीला के सम्बन्ध में पद लिखे है। आपकी कृतियो में ईश महिमा, राधिका शरीरोपमा, श्री कृष्णोपमा, पतित पत्नोपमा आदि मुख्य है। आपने राजस्थानी के अलावा ब्रजभाषा में भी पद लिखे है।

कविया चिमनजी (1833–1887 ई.) चारण काव्य की दृष्टि से कविया चिमन जी का महत्त्वपूर्ण स्थान है। व सुयोग्य कवि एव विद्वान थे। आपने ऐतिहासिक-वीररसात्मक, भक्तिपरक एवं छंदशास्त्रीय विषयो पर कुल मिलाकर 21 ग्रंथों की रचना की। आपके काव्य मे चारण काव्य की सभी परम्परागत शैलियों के दर्शन होते हैं। 'सोढायण' आपकी प्रसिद्ध काव्य कृति है जिसमे सोढा राजपूतों के वीरत्व एवं शौर्य का प्रभावशाली वर्णन किया गया है।

शिवबक्स पालावत (1844–1899 ई.)—शिवबक्स पालावत अलवर के महाराजा मगलसिंह के राजदरबारी कवि थे। 'अलवर की पट्ऋतु कमाल' आपकी साहित्यिक काव्य कृति है। इसमे पट्ऋतु के माध्यम से महाराजा के क्रिया-कलापो एवं लोक जीवन का सुन्दर चित्रण किया गया है।

ऊमरदान लालस (1851–1903 ई.)—ऊमरदान लालस का जन्म जोधपुर जिले के ढाढरवाड़ा ग्राम में हुआ था। बाल्यावस्था मे माता-पिता का देहान्त हो जाने के कारण ये सेड़प्पा के रामस्नेही सम्प्रदाय में दीक्षित हो गये। बाद में लालस दयानंद सरस्वती के उपदेशों से प्रभावित होकर पुनः गृहस्थी हो गये। आपकी

कविताओं का संग्रह 'ऊमर काव्य' नाम से प्रकाशित हुआ है। आर्य समाज से प्रभावित होने के कारण आपने सामाजिक कुरीतियों एवं पाखंडों पर तीखा व्यंग्य किया है। आपकी भाषा सरल बोलचाल की होते हुए भी प्रभावशाली है।

सुधारवादी दृष्टिकोण के कारण 'दारु रा दोस' अवार को हाल, विभिचार की बुराई, अमल रा ओगण, तमाखू की ताड़न, धर्म कसौटी आदि रचनाएं काफी लोकप्रिय हैं। इसमें कोई संदेह नहीं लालस का काव्य परम्परागत काव्य शैली से बिल्कुल भिन्न था जिसमें जन-जागृति का स्वर प्रधान था।

महाराज चतुरसिंह (1879–1929 ई.)—सहज सरल प्रकृति के अनुरूप महाराज चतुरसिंह सहृदयी कवि थे। आप मेवाड़ में करजाली के स्वामी महाराज सूर्यसिंह के वंशज थे। आपका जीवन एक योगी और भक्त व्यक्ति जैसा था क्योंकि पत्नी के देहान्त के बाद आपने उदयपुर शहर के बाहर एक गांव के पास कुटिया बनाकर साधु जीवन व्यतीत किया। आपने 18 ग्रंथों की रचना की, जिनमें भगवत गीता की गंगाजली टीका, परमार्थ विचार, योगसूत्र की टीका, अलख पचीसी, चतुर-चिंतामणि, अनुभवप्रकाश, चतुर प्रकाश आदि प्रमुख है। आपने राजस्थानी एवं ब्रज दोनों भाषाओं में काव्य रचना की। भाव प्रवणता, मौलिकता और स्वाभाविकता आपके काव्य की प्रमुख विशेषताएं हैं। मेवाड़ में मीरां के बाद लोकप्रिय कवियों में दूसरा स्थान महाराज चतुरसिंह का है।

मोड़सिंह महियारिया (1861 ई.)—मोड़सिंह महियारिया चारण काव्य के प्रमुख कवि थे आपने सूर्यमल्ल मिश्रण की अधूरी वीर सतसई को पूरा करने के लिए 453 दोहे और लिखे लेकिन वे भाव व्यंजना की दृष्टि से उतने प्रभावशाली नहीं हैं क्योंकि सूर्यमल्ल की तुलना में महियारिया सामान्य प्रतिभा के कवि थे।

हिंगलाजदान कविया (1861–1948 ई.)—चारणशैली के प्रभावशाली कवि हिंगलाजदान कविया का जन्म जयपुर के निकट सेवापुरा गांव में हुआ। आपकी रचनाओं में मृगया मृगेन्द्र, प्रत्यय पयोधर, साल गिरह शतक, मेहाई महिमा, दुर्गा बहत्तरी, प्रासेट अपजस बाणिया रासो आदि प्रसिद्ध हैं। आपने करणी जी एवं इन्द्रबाई की स्तुति भी लिखी है। हिंगलाजदान कविया डिंगल के उद्भट्ट विद्वान थे। भाषा पर आपका अच्छा अधिकार था।

केशरीसिंह बारहठ (1871–1941 ई.)—केशरीसिंह बारहठ प्रसिद्ध क्रांतिकारी और देशभक्त कवि थे। इनके सम्पूर्ण परिवार ने देश की आजादी के लिए बलिदान किया। प्रताप चरित्र, राजसिंह चरित्र, दुर्गादास चरित्र, जसवन्तसिंह चरित्र और रूठी राणी आपके प्रमुख काव्य ग्रंथ है। मेवाड़ के महाराणा फतेहसिंह को सम्बोधित करके आपने 'चेतावणी रा चूंगट्या' (13 सोरठे) लिखे जो काफी चर्चित रहे। वीर रस का ओजस्वी वर्णन आपके काव्य की प्रमुख विशेषता है।

उदयराज ऊजल (1885–1967 ई.)—परम्परागत काव्यशैली के सुयोग्य कवि और चारण साहित्य के प्रसिद्ध विद्वान उदयराज ऊजल का जन्म मारवाड़ में

ऊजला गाव में हुआ । 'दीपै वारां देश ज्यांरो साहित जगमगै' जैसे उद्‌बोधक वाक्य के रचयिता उदयराज ऊजल के काव्य में राजस्थान की धरती, इतिहास और भाषा के प्रति गहरा प्रेम है । घूड़सार, मारवाड़ रा वीर, दूधप्रकाश, मातृभाषा दोहावली, मानिया रा दूहा, स्वराज सतक, तेज सतक, सर्वोदय सतक, श्रम सतक सती-सतक, भाषा सतक आदि आपकी चर्चित रचनाएं हैं । आपने अपनी कृतियों में दोहा, सोरठा, छप्पय एवं डिंगल गीत शैली को अपनाया ।

नाथूसिंह महियारिया (1891–1973 ई.)—परम्परागत चारण शैली को अपनाते हुए भी नाथूसिंह महियारिया ने वीरत्व एवं जीवनादर्शों की नवीन व्याख्या प्रस्तुत की । ईसरदास, बाँकीदास और सूर्यमल्ल मिश्रण जैसे कवियों की वीर परम्परा में ही इन्होंने 'वीर सतसई' काव्य की रचना की । अन्य रचनाओं में गांधी शतक, हाडी शतक, चूंडा शतक, झाला मान शतक, वीर शतक, कश्मीर शतक आदि हैं । काव्य सौन्दर्य की दृष्टि से 'वीर सतसई' महत्त्वपूर्ण कृति है जिसमें युगानुकूल रूप में वीरत्व और त्याग के आदर्श का वर्णन करते हुए राष्ट्रीय भावना के प्रखर रूप को प्रस्तुत किया है ।

रावल नरेन्द्रसिंह (1893–1967 ई.)—रावल नरेन्द्रसिंह इतिहासकार एवं चारण शैली के सुयोग्य कवि थे आपने 'वीर हजारा' नाम से एक हजार सोरठे लिखे हैं जिनमें राम, हनुमान से लेकर शैतानसिंह भाटी तक के चरित्रों का वर्णन किया गया है ।

परम्परागत काव्य के अन्य कवियो में बालावक्श पालावत (हणूतिया) मुरारि-दान (बूंदी) कविराजा मुरारिदान (जोधपुर) किशन जी (डूंगरपुर, कविराव मोहन सिंह (उदयपुर) राव मानकुमारी (उदयपुर) गणेशपुरी (जोधपुर) प्रतापकुंवरी (जोधपुर) आदि हैं । परम्परागत काव्य आगे भी स्वातन्त्र्योत्तर काल में भी उपलब्ध होता है ।

स्वातन्त्र्योतर काल : नवचेतना का उदय

आजादी किसी भी राष्ट्र के जीवन का महत्त्वपूर्ण मूल्य है । 15 अगस्त, 1947 को जब हमारा देश स्वतन्त्र हुआ तो उसके राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक परिवेश में बड़ा परिवर्तन हुआ । स्वाधीनता के बाद एक नवीन चेतना का विकास स्वाभाविक था । लोगों को आशा थी कि आजादी के बाद सामाजिक और आर्थिक दृष्टि से नव-निर्माण होगा तथा लोगों को अधिक से अधिक सुख-सुविधाएं मिलेगी । राज-थान मे भी आजादी के बाद महत्त्वपूर्ण परिवर्तन हुआ । अप्रैल, 1949 ई. में राजस्थान संघ की स्थापना हुई ओर सामन्ती व्यवस्था की समाप्ति के बाद प्रजातान्त्रिक व्यवस्था ने जन साधारण मे अपार हर्षोल्लास का वातावरण पैदा कर दिया । 1952 ई में प्रथम आम चुनाव हुआ और जन प्रतिनिधियों ने देश की शासन व्यवस्था अपने हाथों में संभाली । राज्यों का विलीनीकरण, जमींदारी

प्रथा का उन्मूलन, मजदूरों के हितों की रक्षा, अछूतोद्धार के लिए अनेक योजनाओं का लागू करना इत्यादि कुछ ऐसे कार्य थे, जिनसे लोगों को आजादी का अहसास हुआ और लगा कि कुछ निश्चित रूप से होगा। लेकिन परिवर्तन की यह परिकल्पना 1955 ई. के बाद टूटती नजर आई और जिन लोगों ने देश की बागडोर सम्भाली थी उन्होंने अपने क्षुद्रस्वार्थों और भ्रष्टाचार से पूरे राजनीतिक परिवेश को दूषित कर दिया। चारों ओर भाई-भतीजावाद, स्वार्थपरता, अनाचार रिश्वतखोरी, पक्षपरता, और संकीर्णता फैल गई। 1960 ई. तक आते-आते नेहरू युग का अन्त हो गया और राजनीतिक तथा सामाजिक स्तर पर मूल्यों के मोहभंग की प्रक्रिया प्रारम्भ हो गई। 1962 ई. में चीन का आक्रमण, 1964 ई. में नेहरू की मृत्यु, 1965 में भारत और पाकिस्तान का युद्ध, 1971 ई. में बंगला देश की लड़ाई, 1973 ई. में बिहार में छात्र-आन्दोलन, 1975 ई. में आपात स्थिति, 1977 ई में सत्ता परिवर्तन और 984 में इन्दिरा गांधी की हत्या—ये राजनीतिक क्षेत्र की कुछ ऐसी महत्वपूर्ण घटनाएँ थी जिन्होने पूरे राजनीतिक परिप्रेक्ष्य को झकझोर दिया और सत्ता पक्ष को अपनी नीति और योजनाओं मे कई महत्वपूर्ण कदम उठाने पड़े।

आर्थिक क्षेत्र में देश के सर्वांगीण विकास की दृष्टि से 1951 ई. में पंचवर्षीय योजनाओं का श्रीगणेश हुआ तथा आर्थिक क्षेत्र मे कुछ निर्धारित लक्ष्यों की पूर्ति भी हुई। सत्ता के विकेन्द्रीयकरण की दृष्टि से देश में पचायत राज की व्यवस्था की गई और 2 अक्टूबर, 1959 ई. में प. जवाहरलाल नेहरू ने नागौर मे पचायती राज व्यवस्था की शुरुआत की। राजस्थान मे शिक्षा, चिकित्सा, कृषि, सिंचाई, यातायात, उद्योग धन्धो के माध्यम से विकास कार्यों को बढ़ावा दिया गया। ग्रामीण विकास की कई योजनाओं ने पिछड़पन को मिटाने मे सहयोग दिया लेकिन राजनीतिक घोषणाओं और आर्थिक योजनाओं का परिणाम निराशाजनक ही रहा। वस्तुओ के बढ़ते मूल्य, खाद्य समस्या, बेरोजगारी, पूँजी के केन्द्रीयकरण आदि समस्याओ ने राष्ट्र व्यवस्था के सामने संकट उपस्थित कर दिया था जिससे चारों तरफ असतोष की लहर नजर आ रही थी। प्रशासन की आपाधापी, नौकरशाही और भ्रष्टाचार ने जन मानस में विरोध और आक्रोश की भावनाये पैदा कर दी। सत्ताधारी लोग राष्ट्र निर्माण की अपेक्षा स्व-निर्माण में लग गये। दूसरी तरफ आजादी के बाद आने वाली युवा पीढी ने अपने बुजुर्ग नेताओं की स्थिति को देखा तो उसमे विरोधस्वरूप उच्छृंखलता, उद्दण्डता, लक्ष्यहीनता और विध्वसक प्रवृत्ति पनपने लगी जिसके कारण चारों तरफ अनुशासनहीनता और अराजकता का वातावरण दिखाई देने लगा।

मोहभंग की इस मानसिकता का आघात सबसे अधिक मध्यवर्ग को लगा। फलत: वैयक्तिक और सामूहिक स्तर पर तभी अँचारिकता उठने लगी और विकास

के प्रवाह में लोगों ने अजीब तरह का टकराव महसूस किया। सामाजिक मूल्यों का विघटन, शहरी सभ्यता का आकर्षण, संयुक्त परिवार प्रथा का अन्त, गांवों से शहरों की तरफ दौड़ना, जीवन यापन की नवीन समस्यायें आदि कुछ ऐसी स्थितियाँ थी जो बदलते परिवेश को प्रमाणित कर रही थी।

साहित्यिक चेतना--स्वाधीनता के पश्चात् उत्पन्न होने वाली राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक स्थितियों ने राजस्थानी साहित्य को भी प्रभावित किया है और युगानुरूप साहित्य की संरचना के कथ्य और शिल्प की दृष्टि से बदलाव आया है। ढहती सामन्ती व्यवस्था, रूढ़िवादी मनोवृत्ति, ग्रामीण क्षेत्रों का पिछड़ापन, पंचायत राज व्यवस्था से प्रदूषित गवई परिवेश, बेरोजगारी, आर्थिक दबावों से टूटते सम्बन्ध, शिक्षा के फैलाव से उत्पन्न जागरूकता, अकाल की मंडराती काली छाया, राजनीति की उठा-पटक से फैलता जनाक्रोश आदि कुछ ऐसी स्थितियां हैं जिन्होंने यहां के परिवेश को प्रभावित किया, फलतः राजस्थानी साहित्य की संवेदनाओं में काफी परिवर्तन आया है तथा नवलेखन की सन्तोषजनक स्थिति दिखाई देती है। आज राजस्थानी साहित्य में एक तरफ मोहभंग से उत्पन्न निराशा भी है तो दूसरी तरफ मौजूदा स्थितियों से जूझने और संघर्ष करने की हिम्मत भी। यहां के व्यक्ति का यह जूझना कई स्थितियों और कई स्तरों पर है और इससे जो मानसिकता बनी है वह राजस्थानी की नयी कविता में नये सन्दर्भों के साथ स्पष्ट रूप में उजागर हुई है।

आजादी के आस-पास की चेतना ने राजस्थानी साहित्य में रचनात्मक लेखन, शोध और पत्रकारिता के क्षेत्र में नवीन परम्पराओं को जन्म दिया। स्व. सूर्यकरण पारीक, नरोत्तमदास स्वामी, अगरचन्द नाहटा, डा. मोतीलाल मेनारिया, डा. कन्हैया लाल सहल आदि विद्वानों ने राजस्थानी के प्राचीन साहित्य को हिन्दी जगत में प्रस्तुत किया तथा रचनात्मक लेखन को भी प्रोत्साहित किया। सूर्यकरण पारीक ने 'बोलावण' या 'अभिज्ञापूर्ति' (1933 ई.) नाम से एकांकी संग्रह प्रकाशित किया। इसके बाद राजस्थानी काव्य की महत्वपूर्ण रचना चन्द्रसिंह की 'बादली' (1941 ई.) प्रकाशित हुई जिसमें पहली बार पारम्परिक शैली से अलग हटकर नवीन विषय-वस्तु को अपनाया। यह आधुनिक राजस्थानी की प्रथम काव्य कृति है।[1] 'बादली' के बाद मेघराज मुकुल की लोकप्रिय मंचीय रचना 'सैनाणी' (1944 ई.) ने राजस्थानी भाषा को लोकप्रिय बनाने में आशातीत सफलता प्राप्त की। इन दोनों रचनाओं का राजस्थानी काव्य में ऐतिहासिक महत्त्व है[2] तथा इन्होंने परवर्ती लेखन को नयी

1. आधुनिक राजस्थानी साहित्य : प्रेरणा और स्रोत : डा. किरण नाहटा, पृ 29
2. History of Rajasthani Literature : Dr. H. L. Maheswari, P. 215.

प्रेरणा एवं दिशा प्रदान की है। 1944 ई. में दिनाजपुर मे राजस्थानी साहित्य सम्मेलन हुआ जो राजस्थानी का पहला सम्मेलन था और मुकुल ने पहली बार इसी सम्मेलन में 'सैनाणी' का कविता पाठ किया। इस समय कुछ राजस्थानी पत्रिकाएँ भी प्रकाशित हुई जिनमें राजस्थानी (1946 ई.), राजस्थान भारती (1946 ई.), मारवाड़ी (1947 ई.) एवं 'जागती जोत' (वि. स. 2004) आदि पत्रिकाओं ने रचनात्मक लेखन को प्रोत्साहित किया। यद्यपि इन पत्रिकाओं मे जो रचनाए प्रकाशित हो रही थी, वे परम्परागत शैली की थी तथापि लेखन की तरफ रुचि बढ़ती जा रही थी। 1950 ई के बाद लेखन में कुछ गति एवं नये रचनाकार आये जिनमें राजस्थानी गद्य और पद्य के प्रति उत्साह का भाव था। वस्तुतः आजादी के बाद जो सामाजिक और राजनीतिक दृष्टि से परिवर्तन हो रहा था उसका प्रभाव तत्कालीन रचनाओं मे धीरे-धीरे आ रहा था। 1953 ई में रावत सारस्वत ने 'मरुवाणी' (जयपुर) पत्रिका का प्रकाशन शुरू किया जो आजादी के बाद की पहली साहित्यिक पत्रिका थी। 1954 ई. में किशोर कल्पना कांत ने 'ओलमो' (रतनगढ़) पत्रिका प्रारम्भ की। इन दोनों पत्रिकाओं का ऐतिहासिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण स्थान है क्योंकि इन्होंने व्यक्तिगत प्रयास से रचनाओं को प्रेरित किया और राजस्थानी भाषा के प्रति लगाव और जागृति पैदा करने मे विशेष भूमिका निभाई। छोटे कलेवर वाली ये दोनों पत्रिकाएँ राजस्थानी गद्य और पद्य की चर्चित रचनाओं को आकर्षक रूप में छापती रही हैं। राजस्थानी भाषा के लेखक एवं पाठक तैयार करने एवं भाषाई एकरूपता लाने मे दोनों पत्रिकाओं का योगदान विशिष्ट माना जायेगा।

सन् 60 के आस-पास रचनात्मक लेखन ने गति एवं व्यापकता धारण की और काव्य विधा की प्रधानता रही, यद्यपि गद्य की विविध विधाओं मे भी रचनाए लिखी जा रही थी लेकिन राजस्थानी कविता को मचीय लोकप्रियता मिलने के कारण अन्य कवियो ने भी खूब गीत लिखे। इस काव्य धारा मे राष्ट्रीयता, शृंगारिकता, प्रगतिशीलता, प्रकृति-चित्रण आदि की प्रवृत्तियाँ उभर कर आई। 1965 ई. के बाद कविता में अधुनातन प्रवृत्तियो के फलस्वरूप कथ्य और शिल्प में नवीनता आई और राजस्थानी की नयी कविता में कुछ सशक्त हस्ताक्षरो ने युगबोध को वर्तमान सामाजिक परिवेश के सन्दर्भ मे अभिव्यक्त किया। इसी भांति राजस्थानी गद्य के क्षेत्र में कहानी लेखन अन्य विधाओ की तुलना मे अधिक रहा। अब हम इन दोनों विधाओ के विकास और तत्सम्बन्धी प्रवृत्तियों का मूल्यांकन करेंगे।

काव्य-धारा :

स्वातन्त्र्योत्तर राजस्थानी कविता में कथ्य और शिल्प की दृष्टि से व्यापकता और विविधता है। इसमें एक तरफ परम्परागत शैली के दर्शन भी होते हैं तो दूसरी तरफ समसामायिक परिवेश के प्रति जागरूकता भी। राजस्थानी कविता की विविध प्रवृत्तियो को अग्रलिखित रूप से विश्लेषित किया जा सकता है—

1. राष्ट्रीय-सांस्कृतिक धारा
2. व्यक्तिवादी गीत धारा
3. प्रगतिवादी धारा
4. प्रकृति-चित्रण
5 हास्य-व्यंग्य
6. नयी कविता

राष्ट्रीय-सांस्कृतिक धारा—आजादी से पूर्व परम्परावादी वीर काव्य की रचना तो राजस्थानी भाषा मे बराबर होती रही है लेकिन आजादी के पश्चात् बदलती हुई परिस्थितियो मे भी कुछ सामयिक घटना-प्रसग के सन्दर्भ में राष्ट्रीय भावना से ओत-प्रोत काव्य की रचना हुई है। ऐसी रचनाओं की पृष्ठभूमि पूर्ववर्ती वीर काव्य परम्परा रही है फलतः पारम्परिक शैली और नवीन शैली मे कविताएं लिखी गई। 1962 ई. का भारत-चीन और 1965 ई का भारत-पाक युद्ध इसका उदाहरण है। इन दोनों युद्धो ने राजस्थानी कवियो को वीर रसात्मक काव्य लिखने के लिए प्रेरित किया। राष्ट्रीय भावनाओ का चित्रण करते हुए कवियो ने राष्ट्र को सर्वोपरि मानकर व्यापक राष्ट्रीयता का परिचय दिया है। ऐसी कविताओं मे मातृभूमि के प्रति त्याग, बलिदान और सर्वस्व अर्पित करने का भाव अभिव्यक्त हुआ है। इन रचनाओं मे सकुचित मनोवृत्ति का परित्याग और देश के लिए प्राणोत्सर्ग करने की भावना प्रधान रही है। राजस्थानी कवियों ने राष्ट्रीयता के भाव सुदृढ करने के लिए एक तरफ ऐतिहासिक चरित नायको के प्रेरणादायी चरित्र को प्रस्तुत किया है तो दूसरी तरफ पद्य कथाओ के माध्यम से आदर्श प्रसंगो की मार्मिक अभिव्यक्ति की है। इससे प्रतीत होता है कि इस तरह काव्य अपनी गौरवमयी वीर परम्पराओं से अछूता नही रहा। वीर भूमि राजस्थान और उसके प्रेरणादायी श्रेष्ठ चरित्र—महाराणा प्रताप या वीर दुर्गादास। इस तरह कवियो ने एक तरफ महान वीर पुरुषो के आदर्श चरित्र को लिया तो दूसरी तरफ सेना मे लड़ने वाले वीर सिपाही का भी गुणगान किया। राष्ट्रीय भावनाओं मे ओत-प्रोत यह काव्य किसी राष्ट्र के लिए प्रेरणा का आधार स्तम्भ माना जा सकता है।

कवि अपने परिवेश से जुड़ा रहता है, उसके काव्य मे युगीन समस्याओ का चित्रण दिखाई देता है अतः कई बार वह पौराणिक और ऐतिहासिक प्रसंगो के माध्यम से आज की समस्याओं का समाधान प्रस्तुत करता है। कवि का यह सांस्कृतिक बोध संस्कृति के मान-मूल्यो को युगीन परिप्रेक्ष्य मे नये ढंग से व्याख्यायित करता है और इससे चिन्तनगत नवीनता को एक नया आयाम मिलता है। इसमें कोई सदेह नही कि बीसवी शताब्दी की चिन्तन-पद्धति आज की वैज्ञानिक एवं तकनीकी उपलब्धियो मे प्रभावित है और आज का विचारात्मक संघर्ष मानवता के सामने कई तरह की चुनौतियां पैदा कर रहा है, ऐसी बदलती परिस्थितियो मे मानव मूल्यों

र मानव की अस्मिता को बनाये रखने के लिए कवि सांस्कृतिक धरोहर का सहारा
ता है। राजस्थानी कवियों ने अपने काल में राष्ट्रीयता के साथ-साथ सांस्कृतिक
नता के संकट को भी महसूस किया है और ऐसा साहित्य लिखा है जो मानवतावादी
ष्ट से परिपूर्ण है तथा जिसमें मानव के गौरव को प्रतिष्ठित किया गया है।

राष्ट्रीयता और सांस्कृतिक धारा का यह काव्य कथ्य की दृष्टि से परम्परागत
और नवीन भावबोध को तथा शिल्प की दृष्टि से परम्परागत एवं मुक्त छंद विधान
को लिए हुए है।

राष्ट्रीयता को विकसित और व्यापक रूप में प्रचारित करने के लिए इतिहास
प्रसिद्ध वीरों और महत्वपूर्ण पद्यकथाओं के माध्यम से देशभक्ति, शौर्य, त्याग, कर्तव्य-
निष्ठा, स्वाभिमान आदि गुणों को उभारा गया जो किसी भी राष्ट्रभक्त व्यक्ति के लिए
आवश्यक है। मेघराज मुकुल की सेनाणी (1944 ई.) पहली ऐसी श्रेष्ठ वीररसात्मक
रचना थी जिसने अप्रत्याशित लोकप्रियता हासिल की और श्रोताओं की मंचीय कविता
के प्रति अभिरुचि जागृत की। 'सैनाणी' के बाद अनेक ऐसे ही ऐतिहासिक प्रसंगों को
लेकर राजस्थानी में अनेक पद्य कथाएं लिखी गई। इन पद्य कथाओं में कन्हैयालाल
सेठिया की 'पातल और पीथल' भी ऐसी रचना थी जिसने मंचीय दृष्टि से पर्याप्त
लोकप्रियता प्राप्त की। त्याग, कर्तव्य और स्वाभिमान के अपूर्व भावों से ओतप्रोत
दोनों रचनाएं राष्ट्रीय काव्य धारा की प्रेरक और ऐतिहासिक रचनाएं कही जायेंगी।
ऐतिहासिक और पौराणिक पद्यकथाओं में मुकुल की 'कोडमदे' और 'हिरोल' डॉ.
मनोहर शर्मा की 'सुजानसिंह शेखावत', 'बालू जी चावत', मानसिंह झाला, गिरधारी-
सिंह पड़िहार की 'मेघनाद' और 'घड़कोट' करणीदान बारहठ की 'दोवड़ा आसू' आदि
प्रमुख हैं। ऐसी पद्य कथाओं में राजस्थान की गौरवमयी संस्कृति को प्रेरणादायी रूप
में प्रस्तुत करते हुए त्याग, शौर्य, बलिदान, स्वाभिमान और कर्तव्यनिष्ठा के अनुपम
आदर्श को प्रस्तुत करना है। पद्यकथा की यह प्रवृत्ति पौराणिक प्रसंगों के अतिरिक्त
लौकिक प्रेमाख्यान को आधार बनाकर भी प्रकट हुई।

राष्ट्रीयता का एक स्वर भारत-चीन और भारत-पाक युद्ध की प्रेरणा से
लिखी गई रचनाओं में भी दिखाई देता है, जहाँ कवियों ने साम्प्रदायिकता, संकीर्णता
और स्वार्थपरता को त्यागकर मातृभूमि की रक्षा के लिए मर मिटने को ही परम
कर्तव्य माना है। ऐसी रचनाएं 'मरुवाणी', 'ओलमो', 'सप्तशक्ति' आदि पत्रिकाओं में
खूब प्रकाशित हुई हैं। परमवीर पीरूसिंह और परमवीर शैतानसिंह को लेकर
फुटकर रचनाओं के अतिरिक्त परम्परागत वीरकाव्य भी लिखा गया यथा-'पीरू
प्रकास' और 'सैतान सुजस' (सं सवाईसिंह धमोर) इनमें मुकुनसिंह, रेवतसिंह भाटी,
अजयदान बारहठ, रावल नरेन्द्रसिंह, उदयराज उज्ज्वल आदि की रचनाएं उल्लेखनीय
हैं। ये रचनाएं छंदोबद्ध और डिंगल शैली में लिखी गई हैं। इस वीर काव्य परम्परा
में नारायणसिंह भाटी (परमवीर), उदयराज उज्ज्वल, हनुवन्तसिंह देवड़ा, बनवारी
लाल सुमन आदि की फुटकर रचनाएं भी वीरकाल की दृष्टि से महत्वपूर्ण मानी
जायेंगी।

वीर काव्य परम्परा के अन्तर्गत कुछ कवियों ने ऐसे चरित्रों को प्रस्तुत किया है जो ऐतिहासिक चरित्र होते हुए भी मनुष्य चरित्र का प्रतिनिधित्व करने वाले हैं। नारायणसिंह भाटी कृत 'दुर्गादास'(1956) मुक्त छन्द मे रचित राजस्थानी भाषा की पहली सशक्त एवं प्रौढ रचना है। मानवीय भावनाओं को साकार रूप देने वाला और मनुष्य की अस्मिता के लिए जूझने वाला दुर्गादास का चरित्र निःसंदेह महान है। 'दुर्गादास के बहाने कवि ने एक ऐसे मनुष्य को अवतरित किया है जो सम्पूर्ण रूप से अपनी मनुष्य सत्ता को चरितार्थ कर सकता है।[1] कथ्य और शिल्प की दृष्टि से 'दुर्गादास' अनुपम रचना है। परम्परागत वीरकाव्यों में बनवारीलाल सुमन की 'देल्या रो दिवलो' (1963) एक महत्त्वपूर्ण कृति है जिसमें महाराणा प्रताप के प्रेरणादायी चरित्र को मानवीय रूप मे रखने की कोशिश की है। शेखावाटी की सरल, सहज भाषा और प्रभावशाली अभिव्यक्ति इस कृति की विशिष्टता है।

रामेश्वरदयाल श्रीमाली की 'हाडी राणी' (1965) भी मुक्त छंद मे लिखित रचना है जो नारायणसिंह भाटी के 'परमवीर' की तरह श्रद्धांजलि काव्य है। हणुवन्त सिंह देवड़ा की 'सरा दीवा देसरा' (1967), मुकुनसिंह की 'सैतान सतसई' अमरसिंघ री वेलि (1965), पाबजी की वेलि (1964) आदि कृतियाँ भी यशस्वी चरित नायकों का सामयिक सन्दर्भ मे गुणगान है। मुकनसिंह डिंगल शैली के रचनाकार हैं अतः उनकी रचनाएं क्लिष्ट एवं दुरूह है। सत्यनारायण अमन द्वारा लिखित 'शीश-दान' (1961) मे जगदेव पवार के त्याग की ओजस्वी कथा दो सर्गों में वर्णित है। रघुराजसिंह हाडा की रचना 'हरदोल' (1978) मे बुंदेलखण्ड के वीर योद्धा हरदोल का शौर्य और त्याग पाच सर्गो मे प्रकट किया गया है। इससे प्रतीत होता है कि उपर्युक्त रचनाओं मे कवियों ने ऐतिहासिक चरित नायकों के त्याग और बलिदान की अमर गाथा को इस रूप मे प्रस्तुत किया है जिससे लोगो मे देशप्रेम और राष्ट्रीयता का भाव जागृत हो।

चरित्र काव्यों की इस परम्परा मे महात्मा गाधी को आलम्बन बनाकर भी 'गाधी गाथा','गांधी शतक' (नाथूसिंह महियारिया) 'गांधी प्रकाश (स. वेदप्रकाश), बापू (डॉ. मनोहर शर्मा) और सूर्यमल्ल मिश्रण को आधार बनाकर प्रेमजी प्रेम का 'सूरज' (1978) काव्य भी उल्लेखनीय है।

सांस्कृतिक चेतना का स्वर राजस्थानी काव्य में बराबर सुनाई देता रहा है तथा सास्कृतिक माटी के शाश्वत जीवन मूल्यों को नवीन सन्दर्भ मे व्याख्यायित किया गया है। ऐसे कवियो मे डॉ. मनोहर शर्मा, डा. नारायणसिंह भाटी, सत्यप्रकाश जोशी, गिरधारीसिंह पड़िहार, महावीरप्रसाद जोशी, मोहनलाल चतुर्वेदी, सुमेरसिंह शेखावत आदि प्रमुख हैं। डॉ. मनोहर शर्मा राजस्थानी के वरिष्ठ कवि हैं उनकी काव्य कृतियों मे कुंजा, गोपीगीत, अंतरजामी, अमरजामी, अमरफल आदि प्रमुख हैं। इन कृतियों

1. दुर्गादास - नारायणसिंह भाटी, भूमिका, पृ. 28

में लोक संस्कृति और आध्यात्मिक संस्कृति के बीच ऐसा समन्वय स्थापित किया है कि प्रत्येक व्यक्ति उसकी तरफ आकृष्ट हो जाता है। 'गोपीगीत' पौराणिक प्रसंग को तो 'अमरफल' और 'अन्तरजामी' रचना उपनिषदों के प्रसंग को आधार बनाकर लिखी गई है।

सत्यप्रकाश जोशी की महत्त्वपूर्ण काव्यकृति 'राधा' (1960) कृष्ण और राधा के पौराणिक प्रणय-प्रसंग को नवीन रूप में प्रस्तुत करती है। मुक्तछंद में लिखी 'राधा' में कथानक की स्थूलता न होकर उसके भावमय अंतरंग के तन्मय क्षणों की सहज प्रेमानुभूति है और यही प्रेम 'राधा' काव्य का मूल स्वर है जिसमें व्यापकता और उदात्तता है। प्रेम की चिर प्रतीक राधा विश्व के समस्त दु:ख दर्दों एवं पीड़ा को अपने प्रेम में समा लेती है। अन्त में जहां राधा अपने मन के मीत कान्हा को युद्ध से लौट आने का आग्रह करती है, वहां राधा का युगीन परिप्रेक्ष्य में युद्ध विरोधी चरित्र उभर कर आया है। यथा—

मन रा मीत कान्हा रे—
जग में जे मंडग्यो घमसाण, तो
भाई पर भाई करसी वार
आपस में लड़सी, मरसी मांनवी।
चुड़ला फोड़ैला काला ओढ
अमर सुहागण थारी गोपियां।

युद्धोन्माद, भय और विनाश के विरुद्ध राधा का स्वर आज की मानवता का स्वर है।

सत्यप्रकाश जोशी की दूसरी काव्य कृति है 'बोल भारमली' (1974), इसमें भारमली के ऐतिहासिक चरित्र को आत्मकथात्मक शैली में प्रस्तुत करते हुए पूर्ण पुरुष को आधुनिक अभिव्यक्ति है। सामन्ती ताने बाने से बुने समाज की मर्यादाओं, के भीतर रहने वाली भारमली के मनोजगत का यथार्थ रूप इस काव्य में उभरा है। प्रेम और सौन्दर्य की सरल अनुभूतियों से रचित इस काव्य में पूर्ण पुरुष को साकार करने वाली नारी से कवि कहता है—

भोगण दो थारी देही
मिटावण दो थांरो रूप
अेकाकार कर दो थारी आतमा
कर दो मुगत आवागमण सूं
जुगायां थे देवो जुग नै पूरण पुरुष।

सांस्कृतिक चेतना के नये आयामों की प्रस्तुति में डॉ. नारायणसिंह भाटी कृत 'मीरा' (1976) राजस्थानी काव्य की विशिष्ट उपलब्धि है। ऐतिहासिक चरित्रों की अवतारणा में डा. भाटी की मौलिक दृष्टि रही है। मध्यकालीन समाज के सामन्ती

परिवेश में संती मीरा के अन्तर्मन की विद्रोह कथा को सम्पूर्ण नारी मुक्ति संघर्ष के सन्दर्भ में डा. भाटी ने सफलता के साथ अभिव्यक्त किया है। अपने संघर्ष के साथ जूझने वाली मीरा पुरुष की सहयोगिनी बन कर अपनी पीड़ित स्थिति के लिए चेतावनी देती हुई कहती है—

> थे काई देयो घर घर में
> सतियां रो साख
> थांरी अरथणी ने सूंपियो
> थे सेजा रो ने चिता रो ई साथ
> थे थं भुरतो जोवण थारें जोड़
> थे जग रो कोई समर नी हारता।

भाव बोध और नये शिल्प की दृष्टि से 'मीरा' सशक्त काव्य कृति है। नारी स्वातंत्र्य जैसी विश्व समस्या के समाधान में मीरा का स्वर युगीन दृष्टि से महत्त्वपूर्ण कहा जायेगा।

महावीर प्रसाद जोशी ने कृष्ण चरित्र को आधार बनाकर विन्द्रावन (1978) 'मथरा' (1982), 'द्वारिका' (1985) और 'धरमक्षेत्र, (1988) महाकाव्यों की रचना की है। जोशी ने जन मानस के लोकप्रिय पौराणिक प्रसग को लेकर नये जीवन-सन्दर्भों के परिप्रेक्ष्य मे जीवन्तता प्रदान की है। वैचारिकता, भाव विदग्धता और सरल भाषा की दृष्टि से चारो महाकाव्य कृष्ण काव्य परम्परा में अपना विशिष्ट स्थान रखते हैं। आज जहां मुक्त छंद का प्रचलन है वहा जोशी ने परम्परागत छंद विधान को ही अपनाया है।

कृष्ण काव्य की इसी परम्परा मे मागीलाल चतुर्वेदी का 'कृष्ण चरित्र' भी दो खडो मे विभाजित प्रबंध काव्य है जिसमे कृष्ण चरित्र को नवीन रूप में प्रस्तुत किया गया है। इतिहास और संस्कृति से जुड़ी चेतना की अभिव्यक्ति श्रीमन्तकुमार व्यास के 'रामदूत' (1966), कान्हमहर्षि के 'मरू मयक' (1961), विश्वनाथ शर्मा विमलेश के 'रामकथा' (1968), गिरधारीसिंह पड़िहार के 'मानखो' (1964); करणी दान बारहठ के 'शकुंतला' (1974) काव्य मे भी दिखाई देती है। 'रामदूत' मे हनुमान के नये चरित्र को, 'मरू मयक' मे रामदेव के जन सेवक स्वरूप को, 'रामकथा' में राम के आदर्श रूप को, "मानखो" मे राष्ट्रीय भावना को तथा शकुन्तला' में आज के नारी सम्मान को सुरक्षित रखने का भाव आधुनिक सन्दर्भ में प्रकट हुआ है।

सुमेरसिंह शेखावत का 'मरु मंगल' कवि की प्रखर चिंतन दृष्टि से संकलित कविताओ का सकलन है जिसमे उन्होने सांस्कृतिक चेतना के विकसित आयामो को नवीन जीवन मूल्यो के रूप मे प्रस्तुत किया है। वाल्मीकि और मैथिलीशरण गुप्त के काव्य मे जिस सांस्कृतिक औदात्य को चित्रित किया गया है उसी परम्परा मे सुमेरसिंह शेखावत की भाव चेतना भी यथार्थ रूप मे प्रकट हुई है।

राष्ट्रीय और सांस्कृतिक चेतना के अन्य कवियों में नानूराम संस्कर्ता का 'लंकाणधणी' और 'गोपीचन्द', सत्यनारायण अमन का 'शीशदान' (1961), सूर्यशंकर पारीक का 'धरती' (1976), अम्बू शर्मा का 'अम्बू रामायण' और 'बीसू हजारा', नारायणसिंह शिवाकर का 'दुर्गादास सतसई' है। भानसिंह शेखावत का 'हल्दीघाटी', धोकलसिंह चरला का 'मरु महिमा, ताऊ शेखावाटी का 'हम्मीर महाकाव्य', रामसिंह सोलंकी का जन नायक प्रताप (1976) उम्मेदसिंह खीदासर का 'महाराणा री ओलू' (1956) उल्लेखनीय है। राष्ट्रीय चेतना का एक रूप आज भी परम्परागत शैली के काव्य में दिखाई देता है। ऐसे कवियों में, मुकुनदान, रावत सारस्वत, आयुवानसिंह, गणपतिस्वामी, सवाईसिंह धमोरा अक्षयसिंह रत्नू, लक्ष्मणदान कविया, सुरजनसिंह शेखावत आदि प्रमुख हैं आधुनिक शैली के रचनाकारों मे रघुराजसिंह हाडा, गजानन वर्मा, शक्तिदान कविया, कल्याणसिंह राजावत, रामसिंह सोलंकी, बस्तीमल सोलंकी, भगवतीप्रसाद चौधरी (तुलसी चन्नण), कल्याण गौतम (पीवलावय रै भेरू) बद्रीप्रसाद राकेश, बजरंगलाल पारीक हैं।

इस धारा के प्रमुख कवियों का परिचय इस प्रकार है—

मेघराज मुकुल : आजादी से पूर्व कविता लिखने वालों में मुकुल ऐसे कवि है जिन्होंने 'सैनाणी' (1944) जैसी ओजपूर्ण रचना लिखकर मचीय कवियों में अभूतपर्व सफलता और लोकप्रियता हासिल की। इस कविता ने राजस्थानी कविता की तरफ लाखों श्रोताओं का ध्यान आकर्षित किया और फिर इसकी प्रेरणा से ऐसे मार्मिक ऐतिहासिक प्रसगो को लेकर कई पद्य कथाएं लिखी गई। स्वय मुकुल ने भी ऐसी सवेदना के आधार पर 'कोडमदे' 'प्राण री बात' 'दुरगावती', 'चवरी' आदि रचनाए लिखी। 'सैनाणी री जागी जोत' और 'किरत्या' मुकुल की प्रकाशित रचनाओं के सग्रह हैं। आजादी के पश्चात् की मुकुल की कविताओं मे प्रगतिशीलता का स्वर दिखाई देता है जहाँ वे भ्रष्टाचार और शोषण के विरुद्ध आवाज उठाते हैं। मच की सफलता मुकुल की कविताओं की सीमा बनी, यही कारण है कि वे सफल कवि होते हुए भी साहित्यिक स्तर की रचना नही दे पाये। मुकुल की भाषा में ओज, प्रवाह और सरलता है।

डॉ. मनोहर शर्मा—इनका जन्म संवत् 197 वि में झुन्झुनू जिले के बिसाऊ नगर में हुआ। आप राजस्थानी के प्रतिष्ठित विद्वान्, समर्थ कवि एव लोकसाहित्य के मर्मज्ञ हैं। आपने राजस्थानी गद्य और पद्य में काफी साहित्य लिखा है। अरावली की आत्मा, गीतकथा कूंजा, गोपीगीत, अमर फल, अन्तरजामी, पछी, धरती माता, रसधारा, जन जन नायक, आरजधारा, अवला, गजमोती, धोरा रो सगीत, फूल पांखड़ी आदि काव्य कृतियां है। डॉ. शर्मा की काव्य चेतना भी विविधमुखी है, उसमें एक तरफ राष्ट्रीय-सास्कृतिक भावधारा है तो दूसरी तरफ आध्यात्मिक सत्य की सफल अभिव्यक्ति। उनकी कई रचनाओं मे बदलते परिवेश और युग चेतना के प्रति जागरूकता भी है। सास्कृतिक गरिमा, प्रखर चिंतन, सहज-सरल अभिव्यक्ति

शिल्पगत विविधता डॉ. शर्मा के काव्य की प्रमुख विशेषताएँ कही जायेंगी। आपकी रचनाओं में शेखावाटी बोली का ठेठ रूप दिखाई देता है।

कन्हैयालाल सेठिया—आपका जन्म चूरू जिले के सुजानगढ़ कस्बे में 1919 ई. में हुआ। 'रींझाणी' के बाद 'पातल और पीथल' जैसी लोकप्रिय रचना से सेठिया को काफी प्रसिद्धि प्राप्त हुई। आपकी काव्य कृतियों में मीझर, रमणियै रा सोरठा, कू कू, लीलटांस, धर कूंचा धर मजला, मायड रो हेलो, सबद, सतवाणी, अघोरी काल, हेमाणी और दीठ प्रमुख हैं। सेठिया की काव्य चेतना में सांस्कृतिक, प्रगतिशील और आध्यात्मिक बोध के विविध आयाम हैं। चिन्तनात्मक दृष्टि, लोक जीवन का प्रभाव और संवेदनात्मक अभिव्यक्ति की गहनता सेठिया के काव्य की विशिष्टताएँ मानी जायेंगी। सहज, सरल-भाषा और जीवन दृष्टि के स्पर्श के कारण सेठिया की कविताएँ अपनी अलग पहचान रखती हैं। प्रकृति और ईश्वर सम्बन्धी रचनाओं में अन्योक्ति, प्रतीक और बिम्बों का भी सुन्दर प्रयोग हुआ है।

डॉ. नारायण सिंह भाटी—आपका जन्म 1930 ई. में जोधपुर जिले के मालूंगा गांव में हुआ। डॉ. भाटी राजस्थानी भाषा के समर्थ एवं श्रेष्ठ कवि हैं। 'ओळू', 'सांझ', 'दुर्गादास', 'जीवन धन', 'परमवीर', 'कळप', 'मीरां', 'बरसां रा डीगोड़ा डूंगर लांघिया', और 'मिनख नै समझाणो दोरो है' भाटी की प्रमुख काव्य कृतियां हैं। प्रेम और सौन्दर्य की संवेदना पर आधारित भाटी के काव्य में सांस्कृतिक जीवन का औदात्य, वैचारिक दृष्टि की नवीनता और भाव व्यंजना की सूक्ष्मता का जो स्वरूप दिखाई देता है, वैसा राजस्थानी के किसी अन्य कवि में नहीं। भाटी मूलतः रूमानी स्वभाव के कवि हैं अतः यह रूमानियत कभी प्रकृति चित्रण (सांझ) में तो कभी वियोग शृंगार (ओळू) में सहज रूप में प्रकट हुई है। 'जीवण धन' फुटकर रचनाओं का संग्रह है तो 'कळप' चिन्तनपरक गीतों की गुनगुनाहट का।

'दुर्गादास' भाटी की सशक्त काव्य कृति है जो राजस्थानी काव्य की गौरवशाली उपलब्धि मानी जायेगी। जिस मानवीय धरातल पर दुर्गादास जैसे चरित्र को विश्व मानव के के रूप में उजागर किया है उस ऊँचाई तक भाटी की कोई परवर्ती रचना नहीं पहुँची है। सांस्कृतिक विरासत को वर्तमान जीवन सन्दर्भों में पुनर्परीक्षित करके चिन्तन का नया आयाम देना भाटी की अपनी विशिष्टता है। 'दुर्गादास' में राजस्थानी का प्रथम मुक्तछंद है। 'मीरां' जैसे काव्य में मध्ययुगीन चरित्र के माध्यम से नारी जीवन की प्रबलतम वेदना का यथार्थ उद्घाटन हुआ है। भाव और भाषा की दृष्टि से भाटी के काव्य में प्रौढ़ता और मौलिकता है। अछूती कल्पना, प्रतीक, बिम्ब-विधान और नवीन उपमान भाटी की काव्य कृतियों की शिल्पगत विशेषताएँ हैं। सृजनात्मक चेतना की गहराई, व्यापकता और चिन्तन की प्रौढ़ता के कारण भाटी की कविता की अपनी अलग पहचान है। भाषा में डिंगल शब्दों का प्राधान्य है।

सत्यप्रकाश जोशी—आपका जन्म 22 मार्च, 1920 ई. को जोधपुर में हुआ। पूर्ववर्ती काव्य चेतना के प्रभावस्वरूप जोशी ने 'ढोलामारू' और उजली जैसी पद्य कथाएँ लिखी। 'दीवा कांपै क्यूं', 'लस्कर ना थमै', 'राधा', 'बोल भारमली' आदि प्रमुख काव्य कृतियाँ है। जोशी मंच के भी सफल कवि हैं। उनकी काव्य यात्रा के भी कई पड़ाव दिखाई देते है। जोशी ने फुटकर गीतों से लेकर 'बोल भारमली' जैसे खण्ड काव्य की रचना की है। रूमानी रुझान, लोकगीतों की पदावली और चिंतन की सहजता जोशी के काव्य में सफल रूप में अभिव्यक्त हुई है।

'राधा' और 'बोल भारमली' जोशी की दो विशिष्ट काव्य कृतियाँ हैं जहाँ कवि ने सार्वभौम मानवता के प्रश्न को (राधा) तथा स्त्री-पुरुष के यथार्थ सत्य (बोल भारमली) को संवेदना और चिंतन के धरातल पर प्रभावी रूप में प्रस्तुत किया है। 'आगत-अनागत', 'सोन मिरगला', 'आहुतियाँ', 'जोड़ायत', 'गांगेय' आदि जोशी की ऐसी रचनाएँ हैं जो आज के बदलते परिवेश में मानव-मूल्यों के सार्थक रूप को गहराई के साथ चित्रित करती हैं। जोशी की काव्य यात्रा में भाव और भाषा की विविधता है। लोक जीवन की सरलता, मृदुता और भाषागत गेयता आपके काव्य की अपनी विशेषताएँ है।

महावीर प्रसाद जोशी—आपका जन्म झुंझुनू जिले के डूंडलोद कस्बे में 1914 ई. में हुआ। आप संस्कृत, हिन्दी और राजस्थानी भाषा के विद्वान है। आपने संस्कृत, हिन्दी और आयुर्वेद सम्बन्धी काफी लेख लिखे है। कृष्ण काव्य परम्परा में जोशी के चार महाकाव्य प्रकाशित हुए है— बिन्द्रावन, मथरा, द्वारिका और धरम-तिम। सांस्कृतिक चेतना की युगानुकूल प्रस्तुति, दर्शन की सरलता, सुबोध और प्रसाद गुण सम्पन्न शैली जोशी के काव्य की प्रमुख विशेषताएँ हैं। छंदोबद्ध रूप में लिखे चारों महाकाव्य काव्य-सौन्दर्य की दृष्टि से राजस्थानी काव्य की महत्वपूर्ण उपलब्धि माने जायेंगे।

सुमेरसिंह शेखावत—आपका जन्म सीकर जिले के सम्बड़ी गांव में 1935 ई में हुआ। सुमेरसिंह शेखावत की काव्य-चेतना में प्रकृति के सहज चित्रण से लेकर संस्कृति की गरिमा तक का वैचारिक पक्ष है। कविता के कथ्य और शिल्प में उनकी अपनी निजी दृष्टि है। 'मेघमाल' और 'मरुमंगल' आपकी दो काव्य कृतियाँ हैं। 'मेघमाल' ऋतुकाव्य तो 'मरुमंगल' इतिहास, दर्शन और कला की सफल रचना। मानवीय प्रश्नों और नयी संवेदना की दृष्टि से 'मरुमंगल' की रचनाएँ सांस्कृतिक आस्थावादी स्वर को लिए हुए है। छंद विधान की कसावट, शब्द चयन का अर्थ—गाम्भीर्य और टकसाली भाषा का अपना मुहावरा शेखावत की कुछ ऐसी शिल्पगत विशेषताएँ है जो उन्हें दूसरों से अलग करती है। भावात्मक और वैचारिक गाम्भीर्य उनकी रचनाओं का खास गुण है।

व्यक्तिवादी गीतिधारा

गीत राजस्थानी काव्य की लोकप्रिय विधा रही है। मध्यकाल में भी डिंगल गीतों का पठन प्रचलित था तथा चारण कवि ओजस्वी स्वर में डिंगल गीतों का पाठ किया करते थे। आजादी के पूर्व जन-जागृति के लिए जिन समाज-सुधारकों और जन-नेताओं ने प्रयास किया, वहाँ, उन्होंने भी जन साधारण में आजादी प्राप्त करने का माहौल पैदा करने के लिए गीतों का सहारा लिया क्योंकि गेयता गीत का आवश्यक तत्व है इससे गीत के प्रति सहज ही आकर्षण पैदा हो जाता है और गीत अनेक कंठों में गूंजने लगता है। वैयक्तिकता, भावात्मकता, स्वाभाविकता और भाषा की सरलता कोमलता गीत के प्रमुख तत्व स्वीकार किये गये हैं।

आधुनिक राजस्थानी काव्य में आरम्भिक गीत जन-जागृति और उसके पश्चात् पद्य कथा के रूप में प्रचलित हुए। ऐसी पद्य कथाएँ जब मंच पर प्रस्तुत की गई तो उन्हें आशातीत सफलता प्राप्त हुई और फिर ऐसे गीतों की अलग धारा ही दिख ई देने लगी। मेघराज मुकुल की 'सैनाणी' और कन्हैयालाल सेठिया की 'पातल और पीथल' ऐसी ही आरम्भिक प्रेरक पद्य कथाएँ थी। इन दोनों कविताओं ने गीति धारा को नयी दिशा प्रदान की। आजादी से पूर्व क्रान्ति और आजादी के पश्चात् प्रगतिशील दृष्टिकोण को अपना कर चलने वाले गीतकारों ने भी इसी गीत विधा को अपनाया।

स्वातंत्र्योत्तर काल के गीतकारों ने अपनी संवेदना को लोक जीवन से जोड़ने के कारण लोकगीतों की भाषा शैली को खुले रूप में अपनाने की कोशिश की है। इसका कारण इन गीतकारों का ग्रामीण अंचल से जुड़ाव, गाँव की भूली-बिसरी स्मृतियों की जुगाली और प्रेम तथा सौन्दर्य का चित्रण कहा जा सकता है। कुछ गीतकार तो लोकगीतों की भाषा शैली से इतने प्रभावित है कि उनके गीतों और लोकगीतों में कुछ अन्तर नहीं दिखाई देता। ऐसे गीतों के लिए मंच का खुला आमन्त्रण था और मंच पर ऐसे गीत लोकप्रिय हो चुके थे फलत. इस भाव-चेतना पर सबसे अधिक गीत लिखे गए। लोकजीवन की मधुर स्मृतियों में सने ऐसे लोक-गीतों का रचना संसार काफी सीमित रहा जिसमें एक ही भाव की कई कवियों द्वारा पुनरावृत्ति होती रही। इसमें कोई संदेह नहीं कि जनमानस तक पहुँचने में तथा राजस्थानी कविता को मंच पर स्थापित करने में इन गीतकारों की विशिष्ट उपलब्धि मानी जायेगी लेकिन जब मंच और श्रोताओं की मांग पर गीतों की रचना होने लगी तो कई गीतकारों के लिए मंच एक सीमा बन गया।

गीत मूल रूप में रुमानी दृष्टि को लिए होता है और वह जीवन के प्रति भावनात्मक दृष्टिकोण को अपना कर चलता हैं। गीत में कवि अपने निजी सुख-दुःख, व्यथा पीड़ा आदि की अनुभूतियों को प्रकट करता है। वैयक्तिक भावनाओं में उनके गीत में मन का अन्तर्द्वन्द्व, मन की वेदना और मन का संघर्ष उजागर होता है।

इसलिए गीत में भावों की तीव्रता और अनुभूति की सच्चाई होती है। राजस्थानी में जो गीत काव्य लिखा गया उसमें प्रेम, शृंगार, प्रकृति चित्रण, माटी की सौंधी गंध, धरती प्रेम, और प्रगतिवादी स्वर दिखाई देता है। इस दृष्टि से राजस्थानी गीतों में विषयगत विविधता होते हुए भी संवेदनात्मक सीमितता है। सहज, सरल और सतरंगी अनुभूतियों के मन-मोहक संसार को मीठी-कड़वी स्मृतियों से रचे इन गीतों की दुनियाँ छोटी और लुभावनी है। कथ्य और भावबोध की दृष्टि से ये गीत कल्पना और भावना से रचित लोक की उपज हैं जिनका सत्य बिजली की कौंध की तरह एक बार भाव संवेग को तरंगित कर देता है।

राजस्थानी गीतों का एक रूप लोक जीवन से जुड़े लोकगीतों और लोकधुनों पर आधारित है तो दूसरा आधुनिक भावबोध से समन्वित। रचना-प्रकार की दृष्टि से ध्वनि गीत, युगल गीत और सामूहिक गीतों का रूप दिखाई देता है। आज, राजस्थानी में नवगीत एवं गजल भी लिखी जा रही है।

ओजस्वी गीतों की परम्परा के बाद (मुकुल और सेठिया) जिन गीतकारों ने मंचीय जगत में लोकप्रियता हासिल की उनमें सत्यप्रकाश जोशी और गजानन वर्मा के नाम उल्लेखनीय हैं। रूमानी मिजाज के गीतकार जोशी की गीत-संवेदना लोक गीतों और लोक कविता की पदावली से जुड़ी हुई है इसलिए लोकगीतों के कई 'मोटिफ' उनके गीतों में अनेक सन्दर्भों में प्रकट हुए हैं तथा कई गीत लोकगीत के प्रभावस्वरूप लोकगीत शैली में ही लिखे हुए हैं।[1] लोकगीतों का यह रूझान उनके दोनों खंडकाव्य 'राधा' और 'बोल भारमली' में भी दिखाई देता है। 'दीवा कांपै क्यूं' और 'लस्कर थाम्यो नी थमें' जोशी के दो कविता संग्रह हैं जिनमें उनके गीतों की संवेदना प्रेम, परिवार, लोक जीवन और सामयिक सामाजिक चेतना को लिए हुए हैं। जिन गीतों का मूल स्वर प्रेम है उनमें 'मुगधा री माड', 'सोवन माछली', 'सपना री लरां', 'ढलती रात रो गीत', 'ओलू' और 'मुलक' गीत हैं। लोक जीवन के स्वाभाविक रूप की झांकी 'सीख', 'जामण रो सपनो' इत्यादि गीतों में है तो 'जागण रो गीत' 'जैमानखो', 'सेतडला ललकारै', 'आज गिगन पर लाली छाई' आदि गीतों में युगीन भावबोध के अनुरूप प्रगतिवादी स्वर है। निःसंदेह जोशी की गीत-यात्रा के कई पड़ाव हैं लेकिन रोमानी रूझान और लोकगीतों के शिल्प से जुड़ाव उनकी प्रमुख काव्य प्रवृत्ति है।[2] उनके 'सोवन माछली' गीत का एक अंश देखिये—

> पाछो तो बावड़ थारी झुपड़ी रे मछवा
> थारी थाली में चानण चौक
> तड़फा तोड़ै रे सोवन माछली

---

1. हेमाणी : डॉ. तेजसिंह जोधा, पृ. (177) कोमल कोठारी का लेख 'कवियों री सतावणी'।
2. आज री कवितावां : डॉ. हीरालाल माहेश्वरी : रावत सारस्वत, पृ. 13

लोकगीत और लोकसंगीत में गहरे जुड़कर गीत लिखने वालों में गजानन वर्मा का प्रमुख नाम है। सुरीला स्वर, लोकगीतों का मिठास और लोकधुनों का मीठा संगीत उनके गीति संसार की मुख्य विशेषताएँ हैं। लगता है वे लोक गीतों में आगे उसी रचना संसार में अपनी संवेदनाओं के साथ सृजन कर रहे हैं लेकिन उन्हें लोकगीतों का रचनाकार कहना भूल होगी।[1] 'धरती री धुन', 'सोनो निपजै रेत में' और 'बारहमासो' उनके तीन गीत संग्रह हैं। गजानन वर्मा की गीति संवेदना के विविध पक्ष हैं जहाँ वे ग्रामीण परिवेश, पारिवारिक प्रसंगों एवं प्रगतिवादी चेतना को अपने गीतों में अभिव्यक्त करते हैं। हलदी रो रंग सुरंग और 'संस्कार गीत' तो वैवाहिक प्रसंगों में गाये जाने वाले गीतों के लिए इसी भावभूमि पर रचित गीत हैं। इससे प्रतीत होता है कि गजाननवर्मा की काव्य-संवेदना लोकगीतों के रचना संसार के प्रास पास की है। 'सोवन थाल' कविता की ये पंक्तियां देखिए—

पौ फाटी जद बोलण लाग्या
पांख पखेरू पीपल डाल
छोटी छोराणी पीसण बैठी
बाजर मोठ चिणा री दाल
बडी जिठांणी जाणी पीगली
बाजण लाग्यो सोवन थाल।

ध्वनि गीतों की दृष्टि से गजानन वर्मा के गीत महत्त्वपूर्ण एवं प्रेरक कहे जायेंगे। नरोत्तमदास स्वामी के शब्दों में—जीवन की अबाध गति और उसकी हर चंचल लहर का संगीत वे अपने गीतों में उतार पाये हैं।[2] इस दृष्टि से 'सटकनली' और 'घुण रै पिंजारा' ध्वनि गीत सफल एवं लोकप्रिय रहे हैं।

राजस्थानी गीतों में किशोरकल्पना कांत के गीतों की एक अलग पहचान है वे आजादी से पूर्व काव्य-सृजन में लगे हुए निष्ठावान साधक हैं और इस साधना के कारण ही उनके गीतों की संवेदना व्यापक और प्रभावी रूप लिये हुए है। भावात्मक अनुभूतियों के साथ निजी चिन्तन की गहनता उनके गीतों की विशिष्टता है, जिसके कारण गीतों में परिपक्वता दिखाई देती है। राष्ट्रीयता, मातृभूमि प्रेम, आध्यात्मिक चिन्तन का सहज स्पर्श, किशोर कल्पना कांत के गीतों में अधिक उभरा है।

कल्याणसिंह राजावत के गीतों में शृंगारपरक भाव चेतना की प्रधानता है। लौकिक प्रेम, प्रेम के संयोग एवं वियोगजन्य भावों को अनुभूति के धरातल पर सूक्ष्म एवं मर्मस्पर्शी चित्रण रहा है। राजावत की संवेदना मूलरूप में शृंगारिक है लेकिन

1. हेमाणी : डॉ. तेजसिंह जोधा, पृ. 178 (कोमल कोठारी का आलेख)
2. सोनो निपजै रेत में गजानन वर्मा (भूमिका), पृ. 16

खेत-खलियान, ग्रामीण परिवेश, प्रकृति और युग यथार्थ का स्थितियों के अनुभव-बिम्बों से उनके गीतों की दुनियां ओतप्रोत है। मस्ती, उमंग और मादकता राजावत के गीतों की अपनी विशेषता है। 'रामतिया मत तोड़' (196) और 'आ जमीन आपणी' उनके दो गीत संग्रह हैं।

लक्ष्मणसिंह रसवंत का प्रकाशित गीत संग्रह 'रसाल' है। रसवंत की मूल-चेतना शृंगार और ग्रामीण परिवर्तन के सहज आत्मीय चित्रों से जुड़ी है।

रघुराजसिंह हाडा हाडौती अंचल के प्रमुख प्रतिष्ठित गीतकार हैं। आपने मंचीय और साहित्यक दोनों तरह के गीत लिखे हैं। 'फूटा केसूला फूल' और 'मणवाच्या आखर', गीत संग्रह में शृंगार, मातृभूमि और युगीन समस्याओं से घिरे मानव मन के संघर्ष के गम्भीर गीत हैं।

मोहम्मद सदीक के गीतों में युग की असंगतियों के प्रति तीखा आक्रोश और व्यंग्य है। 'जूझतीजूण' (1982) उनका कविता संग्रह है। शृंगारिक चेतना में प्रारम्भ होने वाले त्रिलोक गोयल के गीतों का रचना-संसार बदलते परिवेश में आज की स्थितियों को यथार्थ रूप में प्रस्तुत करने वाला है।

सीताराम महर्षि के गीतों में भाव-गांभीर्य और चिन्तनात्मक दृष्टि है तो मदनगोपाल शर्मा (गीले ऊभी गोरडी) के गीतों में शृंगारिक मादकता।

आज के युवा गीतकारों में भागीरथसिंह भाग्य विषयगत नवीनता और शिल्पगत ताज़गी के कारण अपनी अलग पहचान रखते हैं। 'दरद दिसावर' और 'गीता पैली पूघरी' उनके दो गीत संग्रह हैं जिनमें लोक जीवन की अछूती संवेदना का यथार्थ चित्रण है।

अन्य गीतकारों में नारायणसिंह भाटी, गणेशीलाल व्यास उस्ताद, रेवतदान चारण, सुमनेश जोशी, गिरधारीसिंह पडिहार, केशवपथिक, भीमपांडवा, विश्वेश्वर शर्मा, दुर्गादान गौड़, ओंकार पारीक, बशीलाल बेकारी, श्यामसुन्दर भारती, धनजय वर्मा, कान्हदान कल्पित, अम्बू शर्मा, रामगोपाल शर्मा नवल, मुकुट मणिराज, श्रीमती माया शर्मा, ओम पुरोहित आदि प्रमुख हैं।

गीत के साथ गजल का प्रचलन भी राजस्थानी काव्य में दिखाई देता है। गजल लिखने वाले रचनाकारों में सत्येन जोशी, कुन्दनसिंह सजल, सवाईसिंह शेखावत, भागीरथसिंह भाग्य, प्रेमजी प्रेम, श्यामसुन्दर भारती इत्यादि प्रमुख हैं।

गीतिधारा के प्रमुख गीतकारों का परिचय इस प्रकार है—

किशोर कल्पनाकान्त:—आपका जन्म चूरू जिले के रतनगढ़ कस्बे में 1930 ई. में हुआ। 'ओलमो' जैसी साहित्यिक पत्रिका के सम्पादन में आपने राजस्थानी भाषा की जो सेवा की, वह ऐतिहासिक महत्त्व की है। एक वरिष्ठ गीतकार की दृष्टि से किशोर कल्पनाकांत के गीत मानव सौन्दर्य के साथ-साथ आध्यात्मिक जीवन

की चिन्तना भी लिये हुए हैं। 'मानखो हेला मारै' आपका पहला प्रकाशित कविता संग्रह है।

> कुण सो छोटो, कुण सो मोटो, गीत नाद नैं बूझै
> गू गो ऊमो ग्यान मिनख रो सायर कयँ, अमूजै
> अनुभव रै परवाण अेक, पण भेद नीत सूं न्यारा
> दुख-सुख दोनूं जुड़वा भाई, रसता है उणियारा।

अन्तमुर्खी किशोरकल्पान्त के गीतों मे सौन्दर्य और प्रेम का उन्मुक्त रूप है तो चिन्तन की गहराई भी।

कल्याणसिंह राजावत : दिस. 1939 को नागौर जिले के चितावा गांव में जन्में कल्याणसिंह राजावत मंच के लोकप्रिय गीतकारो मे है। प्रेम, सौन्दर्य और नारी देह की मांसलता के स्वानुभूति बिम्बो के कारण राजावत का काव्य लौकिक प्रेम के धरातल पर टिका हुआ है। 'रामतिया मत तोड', और आ 'जमीन आपणी' आपके दो कविता सग्रह हैं। 'आयोतो हुवेला', 'रूप तिजोरी' 'बेलड़ी' शृंगार की दृष्टि से तो 'फूल-फूलरो मोल', 'रामतिया मत तोड़' इत्यादि कविताएं साहित्यिक विचारधारा, की दृष्टि से चर्चित एव महत्वपूर्ण रही है।

रघुराजसिंह हाडा—आपका जन्म 1933 ई. में चमलासा (खानपुर-झालावाड) मे हुआ। हाडौती अचल के वरिष्ठ एवं गंभीर गीतकारों में हाडा का स्थान सर्वोच्च है। घूघरा, 'अरण बाध्या आभर', 'हरदोल', 'आमल खीव रा' और 'फून केसूला फूल', आपके प्रकाशित कविता सग्रह है। सवेदनशील गीतकार की दृष्टि स हाडा के गीति संसार मे विविधता एक तरफ प्रकृत्ति के मनमोहक चित्र है तो दूसरी तरफ प्रेम का रसमय निमन्त्रण। सृजन यात्रा के परवर्ती गीतो मे चिन्तन की प्रौढता और युगीन यथार्थ की कड़वी-मीठी अनुभूतिया है।

प्रगतिवादी धारा—राजस्थानी काव्य में प्रगतिशील चेतना का उदय अंग्रेजो के साम्राज्यवाद, उपनिवेशवाद एव सामन्तो के अत्याचार एव अनाचार के विरोध स्वरूप उत्पन्न हुआ। प्रथम विश्व युद्ध के पश्चात् महात्मा गांधी के प्रयास से स्वाधीनता आदोलन मे अधिक सक्रियता आई और पूरे देश मे आजादी के लिए संघर्ष प्रारम्भ हुआ। इस सघर्ष में राजस्थान के जन नेता और समाज सुधारकों ने भी अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई लेकिन आम जनता दबी हुई होने के कारण विद्रोह नही कर सकी। विजयसिंह पथिक, अर्जुनलाल सेठी और केसरीसिंह बारहठ का परिवार राजस्थान मे अंग्रेजों के खिलाफ क्रान्ति की शुरुआत करने वाले थे। इनकी प्रेरणा से बाद मे जन नेताओं जयनारायण व्यास, माणिकलाल वर्मा, हीरालाल शास्त्री, आदि ने राजनीतिक जागृति लाने के लिए जन-जागरण वाले गीत लिखे। यही राजनीतिक चेतना आगे चलकर प्रगतिशील काव्य की आधारभूमि भी

वनी और जन कवि उस्ताद, रे तदान चारण, सुमनेश जोशी, मनुज देथावत आदि ने काव्यधारा को एक नयी दिशा प्रदान की ।

इस समय तक विश्व के अन्य राष्ट्रों मे प्रगतिवादी विचारधारा फैलने लग गई थी । प्रगतिवाद का मतलब मार्क्सवादी दर्शन के परिप्रेक्ष्य मे सामाजिक चेतना और भाव बोध को प्रस्तुत करना था । लेकिन राजस्थानी कवियों ने प्रगतिवाद की इस वैचारिक मान्यता से प्रभावित होकर कविताएँ नही लिखी वैसे परोक्ष रूप में उनके काव्य में शोषण, अत्याचार और जुल्म के खिलाफ उग्र प्रतिक्रिया दिखाई देती है । आजादी के बाद सामाजिक और राजनीतिक परिस्थितियों मे जो पूँजीवादी और सामन्ती मनोवृत्तियाँ उत्पन्न हुई, उनका इन कवियों ने तीव्र रूप मे विरोध किया है । इनकी कविताओं मे एक तरफ अन्याय और शोषण के प्रति आक्रोश है तो दूसरी तरफ किसान और मजदूर को जागृत करने का भाव ।

गणेशीलाल व्यास उस्ताद इस प्रगतिशील काव्य धारा के अगुआ कवि है । इन्होंने आजादी पूर्व की साम्राज्यवादी और आजादी के बाद की सामन्ती मनोवृत्ति का निर्भीकता के साथ खुलकर विरोध किया है । 'जन कवि उस्ताद' (1972) के नाम से उनकी कविताओ का एक सकलन प्रकाशित हुआ है ।

सुमनेश जोशी और मेघराज मुकुल की कविताओ मे भी जोर-जुल्म के प्रति तीखा व्यंग्यात्मक स्वर सुनाई देता है । रेवतदान चारण ने अपनी कविताओं के माध्यम से पूँजीवाद और सामन्तवाद की डट कर धज्जियां उड़ाई हैं । भाव और शिल्प की दृष्टि से रेवतदान चारण के काव्य का विशेष महत्त्व है ।

ग्रामीण परिवेश आजादी के बाद भी शोषण का शिकार बना रहा क्योंकि ठाकुर और सेठ की मनोवृत्ति मे परिवर्तन नही आया अत: कुछ कवियों ने भोली-भाली ग्रामीण जनता के मन मे आजादी का भाव पैदा किया और मजदूर तथा किसान का मनोबल ऊँचा किया । गजानन वर्मा, मनुज देथावत, श्रीमन्तकुमार व्यास, भीम पाण्डिया, प्रेमचन्द रावल, त्रिलोक शर्मा आदि ऐसे ही कुछ कवि है । सामाजिक रूढ़ि ग्रस्तता, सड़ी गली मान्यताओ और विसंगतियो से मुक्ति पाकर युगानुकूल सामाजिक चेतना के नये स्वर को प्रचारित करने वाले कवियो ने भी अपने प्रगतिशील दृष्टिकोण का परिचय दिया है । ऐसे कवियों में कन्हैयालाल सेठिया, किशोर कल्पनाकांत, कल्याणसिंह राजावत, रघुराजसिंह हाड़ा, सत्य प्रकाश जोशी, हनुवंत सिंह देवड़ा, ओंकार पारीक, वेद व्यास, मोहम्मद सदीक, भंवर सिंह सामोर, करणीदान बारहठ, दुर्गादान गौड़ आदि हैं ।

प्रगतिशीलता का स्वर राजस्थानी की नयी कविता में भी दिखाई देता है जहाँ कवि आज के आम आदमी के संघर्ष का हिस्सेदार बनकर उसे यथार्थ रूप में प्रकट करता है लेकिन फिर भी कुछ नये कवियो में प्रगतिवाद की वैचारिक मान्यताओं के प्रति झुकाव रहा है । ऐसे कवियों में डॉ. तेजसिंह जोधा, नन्द भारद्वाज, श्री

बोहरा, पुरुषोत्तम छंगाणी, चन्द्र प्रकाश देवल, श्याम महर्षि, आईदानसिंह भाटी आदि प्रमुख है।

इस प्रगतिवादी काव्य चेतना के प्रमुख कवि इस प्रकार है—

गणेशीलाल व्यास उस्ताद—साम्यवादी विचारधारा के समर्थक गणेशीलाल व्यास 'उस्ताद' का जन्म जोधपुर मे 1904 ई. मे हुआ। वे क्रान्तिकारी थे और आजादी से पूर्व कई बार जेल भी गये। 'जन कवि उस्ताद' नाम से इनकी कविताओं का संग्रह प्रकाशित हुआ है। उस्ताद ने नृत्य गीत रूपक गीत नृत्य आदि की रचना भी की है। हिन्दी, उर्दू एव अंग्रेजी भाषा की उस्ताद को अच्छी जानकारी थी। जन-नायक जयनारायण व्यास के साथ जन-आन्दोलनों मे भाग लेने वाले लोगों में उस्ताद का स्वर सबसे आगे था इसलिए इन्हे जन कवि का सम्मान भी दिया गया।

उस्ताद की सृजनात्मक संवेदना के कई स्तर दिखाई देते हैं। उनकी कविता उद्‌बोधनात्मक, राजनीतिक चेतना और सामाजिक जन-जागरण को समेटे हुए है इसलिए उनकी कविता मे जागृति, विद्रोह और व्यंग्य की तीखी चुभन है। पूंजीवादी और सामन्ती व्यवस्था को पलटने के लिए उस्ताद लोगों को उद्‌बोधित करते हुए कहते है—

थे गिणती में घणा मायला, हाकं सूं क्यूं डरपो
गिणती रा तिणखा है चुगलो, बाढेती ले भड़पो
थे थरो धमक नै पोल सायी, कर दो बींटा गोल
थंदा मेनत री जै बोल

इसी तरह 'जाग रण बंका सिपाही', 'माथा देणा पड़सी मुलक न मोट्यारां', 'परण्या डरै मती' आदि कविताओं मे उद्‌बोधन का स्वर है। जिस त्याग और बलिदान के बाद आजादी प्राप्त हुई और उसके पश्चात् उस्ताद ने जब राजनीतिक जीवन मे व्याप्त भ्रष्टाचार, शोषण एव अन्याय को देखा तो उन्हे बड़ा दुःख हुआ—

सोन कवं सूरज ऊगो, पण कठै गयो परकास।
हाय-हाय नै लावण दौड़े, किण री राखै आस।
मुलक री आ कैड़ी आजादी
पूत पितर मे मच्यो छिनालो च्यारू दिस बरबादी।

उस्ताद मुंहफट थे। वे जो महसूस करते थे उसे तीखे स्वर में प्रकट भी करते थे—

मूल करी जननायक मारी, घरं गधेड़ा केसर क्यारी।

निःसंदेह उस्ताद की कविता के पीछे एक विचारधारा थी वे सर्वहारा वर्ग के समर्थक एव जुझारू व्यक्तित्व के धनी थे। आधुनिक राजस्थानी काव्य मे उस्ताद की कविता का स्वर सबसे अलग है।

रेवतदान चारण—आपका जन्म जोधपुर जिले के मथाणिया गाँव में 1924 ई. में हुआ। रेवतदान का काव्य प्रगतिवादी जन-चेतना की दृष्टि से विशिष्ट है। उस्ताद

का स्वर जन-जागरण में गूँजा तो रेवतदान का स्वर कवि-सम्मेलनों में। आपने मंचीय कवियों में काफी लोकप्रियता प्राप्त की। 'चेत मानखो' आपका प्रकाशित कविता-संग्रह है। रेवतदान की कविता में एक तरफ सामन्ती एवं पूँजीवादी व्यवस्था पर तीखा व्यंग्य है तो दूसरी तरफ मजदूर एवं किसान को जागृत करने का ओजस्वी स्वर। आजादी से पूर्व की कविताओं में किसान विद्रोह की झलक है। इंकलाब की आँधी, चेत मानखा, माटी थनै बोलणो पडसी, इत्यादि रेवतदान की चर्चित रचनाएँ हैं। किसान को उद्बोधित करते कवि कहता है—

> मांग्या खेत मिलै नी करसा मोल चुकाणो पड़सी
> मोत्यां मूँगी इण धरती री, कौल निभाणो पड़सी
> सामी छाती जे कोई आयो, जोर जताणो पड़सी
> खेत खड़तां हल में रोवयो, हाथ कटाणो पड़सी
> लोई बिना रंग नीं आवै धरती पड़सी धोली
> कितरा दिन तक सबर करैला, माटी हुसनै बोली
> रे मदा चेत मानखा चेत,
> जमानो चेतण रो आयो।

रेवतदान की भाषा में ओज, वेग और पैना व्यंग्य है।

गजानन वर्मा—आपका जन्म चूरू जिले के रतनगढ़ कस्बे में 1927 में हुआ। गजानन राजस्थानी के लोकप्रिय गीतकार हैं जिन्होंने कवि-सम्मेलनों में अपने गीतों के कारण खूब ख्याति प्राप्त की है। 'धरती री धुन', 'सोनो निपजै रेत में' 'बारहमासा' आदि आपके कविता संग्रह हैं। लोकगीतों की संवेदना और लोकसंगीत के प्रभाव के कारण गजानन वर्मा के गीतों का विशिष्ट आकर्षण रहा है। ग्राम्य जीवन के मनमोहक प्रसंगों की अवतारणा में ही गजानन ने अपने प्रगतिवादी स्वर का परिचय भी दिया है लेकिन अपने स्वर को वे अन्त तक समर्थन नहीं दे पाये हैं। उनकी काव्य चेतना के कई पड़ाव है लेकिन मूल रूप में वे लोक जीवन की मस्ती और खुशहाली के गीतकार हैं।

'हाली हलकारो दे' 'धरती अब पलवाडो फेरे', पूरब में लाल सूरज उग आयो, भड़वो सेत रूखाले इत्यादि प्रगतिवादी चेतना के स्वरों की कविताएँ हैं। खेत और किसान गजानन के गीतों में नयी संवेदना के साथ है। अपने ध्वनि गीतों के माध्यम से उन्होंने मेहनत-मजदूरी से पेट भरने वाले सर्वहारा वर्ग का प्रभावी चित्रण किया है।

मनुज देपावत—प्रगतिवादी चेतना के सशक्त कवियों में मनुज देपावत का उल्लेखनीय नाम है। देपावत का अल्पायु में ही निधन हो गया था इसलिए उनकी कम कविताएँ ही प्रकाश में आई हैं लेकिन फिर भी उपलब्ध रचनाओं में उनके स्व-की अलग पहचान नजर आती है—

उठ खोल उणींदी आंखड़ल्या, नैणा री मीठी नींद तोड़
रै रात नहीं अब दिन उगियो, सुपनां रो झूठो मोह छोड़
थारी आंख्या में राच रैया, जंजाल सुहाणी रातां रा
तू कोट बणावै उण जनोडै, जुग रो बोदी बातां रा

प्रकृति चित्रण—आजादी से पूर्व भी प्रकृति का चित्रण राजस्थानी काव्य में बराबर होता रहा है। प्रायः कवियों ने उद्दीपन रूप में ही प्रकृति का चित्रण किया है। 'वसन्त विलास' आलम्बन रूप में प्रकृति चित्रण की दृष्टि से राजस्थानी की प्रथम कृति मानी गई है। 'वेलि किसन रुकमणि री' और 'ढोला मारू रा दूहा' में प्रकृति उद्दीपन रूप में ही गृहीत हुई है, वैसे दो चार स्थल ऐसे भी मिलते है जहाँ प्रकृति का आलम्बन रूप भी दिखाई देता है। प्रकृति का विशुद्ध चित्रण हिन्दी की तरह राजस्थानी में भी आधुनिक युग की देन ही कहा जायेगा। इस दृष्टि से चन्द्रसिंह की 'बादली' (1933) स्वतन्त्र प्रकृति-चित्रण की प्रथम महत्त्वपूर्ण कृति है। रेतीले सूखे राजस्थान में वर्षा का अपना आकर्षण एवं विशिष्ट महत्त्व है, ऐसी स्थिति में किस प्रकार 'बादली' को देखकर जन-मानस में आनन्द और उत्साह की हिलोरें उठने लगती है, इसका स्वाभाविक एवं मनमोहक चित्र प्रस्तुत कृति में प्रकट किया गया है। विषयगत नवीनता, चित्रात्मकता और लोक जीवन सापेक्ष वर्णन 'बादली' काव्य की अपनी विशेषताएं है। यही कारण है कि हिन्दी और राजस्थानी के सभी विद्वानों ने 'बादली' की भूरि-भूरि प्रशंसा की। चन्द्रसिंह की दूसरी कृति 'लू' में भी प्रकृति का विशुद्ध चित्रण है। ग्रीष्म ऋतु की प्रचण्डता और सब कुछ जला कर खाक कर देने वाली भयंकर लू रेतीले रेगिस्तान के संघर्ष की कठोर तपस्या है। कवि ने लू को आधार बनाकर मानवीय भावनाओं का सुन्दर चित्रण किया है। पारम्परिक छन्द, प्रसाद गुण युक्त शैली और सहज अभिव्यक्ति के कारण लू राजस्थानी प्रकृति काव्य में मौलिक कृति मानी जायेगी। चन्द्रसिंह के प्रकृति-काव्य की इस शुरुआत से कई कवि प्रभावित हुए और राजस्थानी में विशुद्ध प्रकृति चित्रण की परम्परा आरम्भ हुई।

नानूराम संस्कर्ता ने 'कलायण' (1949) और 'दसदेव' (1955) प्रकृति काव्य लिखे। उनकी अन्य काव्य कृति 'छप्पय सतसई' (1972) में भी 'प्रकरती सहकड़ो' नाम से प्रकृति-चित्रण के सौ छन्द रखे गये हैं। 'बादली' की परम्परा में ही 'कलायण' लिखी गई जिसमें वर्षा ऋतु के साथ ग्रीष्म, शरद एवं वसन्त ऋतु का चित्रण भी किया है। 'दस देव' में, प्रकृति के दस उपादानों (नीम, खेजड़ा, फोग आदि) का चित्रण किया गया है। 'प्रकरती सहकड़ो' में प्राकृतिक व्यापारों को मानवीय भावनाओं के साथ जोड़कर अभिव्यक्त किया गया है।

डॉ मनोहर शर्मा के काव्य में भी प्रकृति का यथास्थान चित्रण दिखाई देता है। 'अरावली की आत्मा', 'अमरफल' आदि संकलनों में उनकी 'उषा', 'वनदेवी', 'किरण' आदि रचनाएँ प्रकृति से सम्बन्धित है। 'गजमोती' रचना तो प्रकृति काव्य का सुन्दर उदाहरण है।

नारायणसिंह भाटी की 'सांझ' (1954) प्रकृति काव्य की सशक्त काव्य कृति है। मरु प्रदेश के एक गांव की सांझ को कवि साधारणीकरण द्वारा सार्वभौम बनाने में सफल हुआ है। सान्ध्यकालीन ग्राम्य परिवेश के सूक्ष्म एवं मार्मिक चित्रों के कारण सांझ का अपना वैशिष्ट्य है। छायावादी संवेदना, बिम्ब विधान और भाषा की चित्रोपमता भाटी के काव्य की अपनी विशेषताएँ रही हैं। 'सांझ' इसी भावबोध की रचना होने के कारण 'बादली' की परम्परा में एक अनुपम काव्य कृति है। भाटी की अन्य कविताओं मे भी प्राकृतिक सौन्दर्य का चित्रण उपलब्ध होता है।

सुमेरसिंह शेखावत की 'मेघमाल' (1964) ऋतु-वर्णन की परम्परा में सरस एवं सजीव रचना है। वर्षा ऋतु के सौन्दर्य और जन-जीवन की आकांक्षाओं का प्रभावशाली चित्रण इस काल में है। पारम्परिक छन्द में 'वयण सगाई' का प्रयोग सुन्दर हुआ है।

उदयवीर शर्मा की 'डाफो' (1973) और 'सूंटो' (1980) प्रकृति काव्य की दो सुन्दर रचनाएँ हैं। 'डाफो' में शरद ऋतु में चलने वाली शीत लहर का और 'सूंटो' में तेज हवा के साथ आने वाली वर्षा का मार्मिक चित्रण है। 'सूंटो' की प्रतीकात्मा के कारण काव्य-संवेदना मे गहराई दिखाई देती है।

कल्याणसिंह राजावत की 'परभाती' (1979) प्रात.कालीन दृश्यों की मनोरम झांकी प्रस्तुत करने वाली सरस रचना है। 'परभाती' अनुपम सौन्दर्य वाली नायिका भी है तो प्रतीक रूप में जीवन की जागृति और शक्ति भी। 'परभाती' का मानवीयकरण कई स्थलों पर लुभावना है। राजावत की अन्य कई रचनाएँ भी प्रकृति से सम्बन्धित हैं।

प्रकृति को आलम्बन एवं उद्दीपन रूप में चित्रित करने वाले अन्य कवियों में कन्हैयालाल सेठिया डॉ मनोहर शर्मा, गजानन वर्मा, मनोहर प्रभाकर, किशोर कल्पनाकान्त, सुमनेश जोशी, रेवतदान चारण सत्य प्रकाश जोशी, त्रिलोक गोयल, महावीर प्रसाद जोशी आदि है जिन्होंने रचनाओं मे प्रकृति को विभिन्न रूपों में चित्रित किया है। सेठिया ने प्रकृति के माध्यम से जहाँ मनुष्य को प्रेरणाएं दी है वहीं मौजूदा मानवीय समस्याओं का समाधान भी प्रकृति के माध्यम से किया है। 'मींझर', 'लीलटांस' आदि संग्रहों की कविताओं में प्रकृति के सुन्दर रूप के साथ-साथ विचार और मानवीय भावना का भी सुन्दर चित्रण किया गया है। डॉ. मनोहर शर्मा की प्रकृति सम्बन्धी रचनाओं में भारतीय दर्शन और रहस्यानुभति की झलक भी मिलती है। प्रकृति का सहज और सरल चित्रण डॉ. मनोहर शर्मा की अपनी विशेषता है।

प्रकृति का प्रतीकात्मक रूप मे चित्रण भी कई कवियो ने किया है। इस दृष्टि से कन्हैयालाल सेठिया की कुछ रचनाएं महत्त्वपूर्ण हैं। 'लीलटांस' और 'धर मजला धर कूंचा' में अधिकांश रचनाएं जीवन की समस्याओं और आध्यात्मिकता को प्रतीक रूप में विश्लेषित करती हैं। इसी प्रकार रेवतदान चारण (इंकलाब री

आंधी), मेघराज मुकुल (डाफर, छियां-तावड़ो आदि), गजानन वर्मा (रोहिड़ो, लाल सूरज आदि), उदयवीर शर्मा (सूंटो), कल्याणसिंह राजावत (फूल-फूल री मोल) आदि कवियों की रचनाओं में भी प्रतीकात्मकता है।

गजानन वर्मा ने 'बारहमासा' में बारह महीनों में बदलते हुए प्रकृति रूप की सुन्दर झांकी प्रस्तुत की है। 'बारहमासा' की पारम्परिक रचना मे लोक जीवन के मधुर भावो एवं परिवेशगत प्रकृति का संगीतात्मक रूप छिपा हुआ है।

आधुनिक जीवन की जटिलतम संवेदनाओं को प्रकट करने के लिए नये कवि ने भी प्रकृति का सहारा लिया है लेकिन यहाँ कवि का प्रकृति के प्रति नवीन दृष्टिकोण दिखाई देता है। सौन्दर्य बोध के परिवर्तित मापदण्डों के कारण नयी कविता मे प्रकृति का संश्लिष्ट रूप कवि की मन स्थितियों और आज की संवेदना को सही रूप मे प्रकट करता है। यहाँ न तो प्रकृति के प्रति भावनात्मक दृष्टिकोण है और न किसी प्रकार का भावात्मक आरोपण। मणि मधुकर, नन्द भारद्वाज, गोरधनसिंह शेखावत, ओंकार पारीक, चन्द्र प्रकाश देवल आदि की रचनाओं में प्रकृति का नवीन रूप दिखाई देता है जिसमे युग बोध को नये प्रतीकों एवं नये बिम्बों के माध्यम से व्यंजित किया है।

प्रकृति काव्य के प्रमुख कवियों का परिचय इस प्रकार है—

चन्द्रसिंह—आपका जन्म बिरकाली (गंगानगर) मे श्रावण शुक्ला पूर्णिमा संवत् 1969 मे हुआ। आरम्भ से ही आपकी रुचि परम्परागत साहित्य के अध्ययन की रही है। राजस्थान की प्रकृति से गहरा लगाव होने के कारण आपने 'बादली' जैसी महत्त्वपूर्ण काव्य कृति राजस्थानी साहित्य को दी। इस रचना का ऐतिहासिक महत्त्व है क्योंकि यहीं से आधुनिक राजस्थानी कविता का एक नया परिदृश्य प्रारम्भ होता है। 'लू' आपकी दूसरी प्रकृति काव्य की विशिष्ट रचना है। अन्य रचनाओं मे मांझ बाल जै री कोर, कमसार आदि उल्लेखनीय हैं।

'बादली' मे काव्य मे प्रकृति के बदलते रूप के साथ मानवीय भावनाओं का सुन्दर अंकन किया है—

> पहरैं बदलैं बादळी बदल पहर बदलाय।
> सूरज साजन नैं सखी, आसी कुण सो दाय॥

'बादली' राजस्थानी जीवन मे सुख का संचार करने वाली है इसलिए ग्रीष्म ऋतु से तपी मरु धरा 'बदली' की प्रतीक्षा करती हुई मनुहार करती है—

> आयो घणो अडीकता, मरुधर कोड करै।
> पान फूल स सूकिया कांई भेंट धरै॥
> सोनैं सूरज ऊगियो, दीठो बादलियां।
> मरुधर लेवै वारणा, भर-भर आंखड़ियां॥

राजस्थानी लोक जीवन के विविध रूप, सुन्दर कल्पना, प्रसादमय भाषा और प्राकृतिक व्यापारों का सूक्ष्म अंकन बादली की विशेषताएं कही जा सकती हैं।

इसी भाँति 'लू' काव्य में भी चन्द्रसिंह ने ग्रीष्म ऋतु में चलने वाली लूओं की प्रचण्डता को संश्लिष्ट रूप में चित्रित किया है। तप्त लूओं का वर्णन करता हुआ कवि कहता है—

> धरा गगन झाल ऊगले, लद-लद लूआं आय ।
> धप-धप लागै धरड़का, जीव छिपालो थाय ।।
> जीव तिसाया जावतां, ढोड़ा हुया अधीर ।
> झाल-झाल हिवड़ो हुयो, खाली सीरां चीर ।।

इस प्रकार चन्द्रसिंह के काव्य में प्रकृति का विशुद्ध चित्रण दिखाई देता है। 'लू' के माध्यम से राजस्थान की सांस्कृतिक श्रेष्ठता का उद्घाटन भी कई दोहों में सुन्दर बन पड़ा है। कुछ दोहों में वयण सगाई का प्रयोग रसमयता को बढ़ाने वाला प्रतीत होता है।

उदयवीर शर्मा—आपका जन्म बिसाऊ (झुन्झुनू) में कार्तिक शुक्ला 14 संवत् 1988 में हुआ। आप में प्रारम्भ से साहित्य के प्रति रुझान था, यही कारण है कि आपने राजस्थानी भाषा में कहानी, कविता, एकांकी, लघु कथा आदि लिखी। आपकी प्रमुख काव्य कृतियों में फिर भी राज सुरजां (1964), एमना कवार (1965), झांकी (1973), सूंटो (1960) आदि प्रमुख हैं। इनमें 'झांकी' और 'सूंटो' इनके दो प्रकृति काव्य हैं।

'सूंटो' काव्य में कवि ने जहाँ प्राकृतिक स्थितियों का सुन्दर और आकर्षक चित्रण किया है, वहीं 'सूंटो' क्रान्ति का प्रतीक भी मान लिया गया है। इस दृष्टि से इस काव्य में सामाजिक विषमता, वर्ग संघर्ष और विद्रोही भावना को भी प्रभावी ढंग से चित्रित किया है। गरीबी का चित्रण करता हुआ कवि कहता है :

> खून पसीनो कर दिन तोड़ूं, स्याणो-स्याणो नित रो काम ।
> थो टूटा में क्यूं सिर फोड़ूं, दया दिखा क्यूं तो मन थाम ।।
> रोटी पोता घठ न जावे, सावण वेला ने तू टाल ।
> करम खांवटा देख गरीबी, सणी रोटियां गेरे काल ।।

उदयवीर शर्मा के काव्य में प्रकृति का संश्लिष्ट रूप, शेखावाटी की भाषागत सहजता, ओजस्विता और अभिव्यक्ति की प्रखरता दिखाई देती है।

कन्हैयालाल सेठिया, नारायणसिंह भाटी, सुमेरसिंह शेखावत का परिचय अन्य काव्य-प्रवृत्ति के सन्दर्भ में पीछे दिया जा चुका है।

हास्य-व्यंग्य कविता :

आधुनिक राजस्थानी काव्य में हास्य-व्यंग्य की रचनाएँ भी उपलब्ध होती हैं। हास्य और व्यंग्य दोनों परस्पर जुड़े हुए हैं और कविता में इनका सन्तुलन आवश्यक है। अगर कोई रचना विशुद्ध हास्य की होगी तो वह केवल मनोरंजन करेगी। लेकिन हास्य के साथ व्यंग्य होने से कविता पैनी और मर्म पर सीधा प्रहार

करने वाली होगी। आधुनिक काल में सुधारवादी आन्दोलन के फलस्वरूप सामाजिक कुरीतियों और बुराइयों को लेकर तीखी हास्य-व्यंग्य कविताएँ लिखी गईं। ऐसे कवियों में अमरदान लालस का नाम अग्रणी है। लालस की सभी कविताओं का स्वर व्यंग्यात्मक है। 'दारू रा दोस', 'तमाखू की ताड़ना', 'अमल रा औगण', 'खोटै संता रो खुलासो' आदि कुछ कविताएं हैं जिनमें सामाजिक बुराइयों पर तीखा प्रहार है। लालस की कविताएँ सरल होते हुए भी उनकी जागरूकता का परिचय देती हैं।

आजादी से पूर्व साम्राज्यवाद, आर्थिक शोषण, अत्याचार आदि के खिलाफ राजनीतिक चेतना जागृत हो गई थी फलतः तत्कालीन कवियों ने अंग्रेजों के विरुद्ध जन आंदोलन छेड़ने के लिए जो कविताएँ लिखी उनमें आक्रोश अधिक और व्यंग्य कम है। आजादी मिलने पर सामाजिक और राजनीतिक क्षेत्र में साम्प्रदायिकता, भ्रष्टाचार, कालाबाजारी आदि स्थितियों ने एक बारगी आजादी से मोह-भंग की स्थिति पैदा कर दी जिसको आधार बनाकर गणेशीलाल व्यास उस्ताद, मनुज देपावत, रेवतदान चारण, गजानन वर्मा आदि ने व्यंग्य कविताएँ लिखी।

गणेशीलाल व्यास उस्ताद की कविताओं में राजनीतिक स्थितियों के प्रति तीखा आक्रोश और गहरा व्यंग्य है। 'म्हैं थाया अकल बताबा नैं', 'उस्तादां री आण फिरै', 'आजादी रो उतारो', 'नेतावां री जिमरवाई', 'भ्रष्टराज' 'मूल, करी जन नायक भारी', आदि कविताओं में उस्ताद ने मौजूदा स्थितियों पर तीखा प्रहार किया है। प्रगतिशील विचारों के पोषक उस्ताद ने अपने काव्य में सामाजिक पाखंडों और धार्मिक अंधविश्वासों का खुला चित्रण किया है। सामाजिक असंगतियों का यथार्थ रूप उस्ताद की इन पंक्तियों में कितना तीखा है—

> मूड मिनख बिडलां नैं हाकै, कलकत्ता में सांड।
> कला खेत में निर्मल चरै है, बकशाला रा सांड॥

इसी प्रकार गजानन वर्मा, रेवतदान चारण आदि कवियों ने भी पूंजीवादी मनोवृत्ति और शोषण के खिलाफ तीखा व्यंग्य किया है।

राजस्थानी कविता में हास्य के साथ व्यंग्य की स्थिति कवि-सम्मेलनों की व्यंग्य के कारण पैदा हुई और कुछ कवियों ने मंच को ध्यान में रखकर हास्य व्यंग्य कविताएं लिखी, ऐसे कवियों में विश्वनाथ शर्मा विमलेश, बुद्धिप्रकाश पारीक, नागराज शर्मा, अम्बाराम सुदामा, भंवरलाल सोनी, मुरली माधुरी, ताऊ शेखावाटी, सत्यनारायण अमन आदि प्रमुख हैं। इन कवियों ने समसामयिक जीवन, सामाजिक असंगतियों और राजनीतिक स्थितियों पर तीखा व्यंग्य किया है। नेता, सत्ता, परिवार नियोजन, महंगाई बेरोजगारी, समाजवाद, अकाल आदि कुछ ऐसे सामान्य विषय हैं जिनके बारे में प्रायः सभी कवियों ने व्यंग्यात्मक कविताएं लिखी हैं।

विश्वनाथ शर्मा विमलेश हास्य-व्यंग्य कवियों में सर्वोपरि हैं। इन्होंने प्रमुख रूप से सामाजिक और राजनीतिक विषयों को हास्य-व्यंग्य का आधार बनाया है।

'विरमा जी को वार', 'नई साल को नयो कलेण्डर', 'वीनणी उघाड़े मूं डै ग्राई', 'इन्टरव्यू', 'चुणाव भासण', 'रासन की दुकान पर', 'परीक्षा', 'गुजरात को दोरो वेंहबाजो नें', 'भासण पर भासण', 'बीस सूत्री भासण', 'परिवार नियोजन', 'ग्रापरेशन' ग्रौर 'वेंहबाजो' ग्रादि विमलेश की कुछ चर्चित कविताएं हैं जिनमें बढ़ती हुई ग्राबादी, फैशन, परिवार नियोजन ग्रौर सामाजिक तथा राजनीतिक स्थितियों पर सफल व्यग्य है। कविता का प्रस्तुतिकरण ग्रौर शब्द चयन इतना प्रभावी है कि हास्य स्वतः पैदा हो जाता है।

बुद्धिप्रकाश पारीक की कविताग्रों में भ्रष्टाचार, ग्रनाचार ग्रौर सामाजिक विषमताग्रों पर तीखा व्यग्य है। 'मैं गयो देव इन्दर के घर', 'मै गयो सुरग में एक बार', 'म्हैं गया देखबा दीयाली', 'म्है चढ्यो निकासी की घोड़ी' ग्रादि पारीक की चर्चित हास्य व्यंग्य कविताए हैं जिनमें निम्न-मध्यमवर्गीय समाज की कुरीतियो पर गहरी चुटकी ली है।

हास्य-व्यंग्य कवियों में सत्यनारायण ग्रमन का विशिष्ट स्थान है। 'चंठिया' इनकी हास्य-व्यंग्य कविताग्रो का सग्रह है। ग्रमन ने मुख्य रूप से राजनीतिक स्थितियों पर गहरा व्यंग्य किया है। 'थे मत ग्राया', 'रामराज', 'कई होसी' ग्रादि चर्चित रचनाएं हैं। ग्रमन में स्पष्टता एव तीखापन है।

नाजराज शर्मा रोजमर्रा की जिंदगी मे घटित होने वाली ग्रसगतियो ग्रौर समस्याग्रों पर तीखा व्यंग्य करते हैं। 'थारो के ल्या हा' (1974) कविता सग्रह में 'मर्म टिकट दिवा रे राम', 'राज लुगाया रो', 'नेताजी ग्रौर भासण', गरीबी हट ज्यागी' इत्यादि कविताएं ग्राज की सामाजिक एव राजनीतिक समस्याग्रो की ग्रसगति से जुड़ी हुई हैं।

शब्द चयन के माध्यम से हास्य-व्यंग्य की गहरी स्थिति पैदा करने वालों में मोहन माथुरी की ग्रपनी ग्रलग पहचान है। 'दड़ाछंट' सग्रह की रचनाग्रों में सामाजिक विषमता ग्रौर ग्राधुनिक जीवन की कृत्रिमता पर तीखा व्यग्य है। ग्रन्नाराम सुदामा के 'पिरोळ मे कुत्ती ब्याई' कविता संग्रह में वैयक्तिक स्वार्थपरता, रिश्वतखोरी, भ्रष्टाचार ग्रादि पर व्यंग्य है।

हास्य-व्यंग्य कविताग्रों का शिल्प तुकान्त एवं ग्रतुकान्त दोनों रूपों में दिखाई देता है। इधर व्यग्य कविताग्रों में 'पैरोडी', 'डागला' (तुक्तक) ग्रादि का प्रयोग भी हुग्रा है। मुरलीधर व्यास, बुद्धिप्रकाश ग्रादि ने पैरोडी लिखी तो मोहन ग्रालोक ने 'डांखला' के माध्यम से व्यंग्य के नये शिल्प का प्रयोग राजस्थानी कविता में किया।

सन् 60 के बाद राजस्थानी की नयी कविता में भी व्यंग्य प्रवृत्ति का प्राधान्य रहा है तथा नये कवियों ने मौजूदा जीवन की विसगतियों, मूल्यहीनता, निराशा, ग्रनास्था, कुंठा ग्रादि पर तीखा व्यंग्य किया है। इन कवियो मे मणि मधुकर,

तेजसिंह जोधा गोरधनसिंह शेखावत, मंव भारद्वाज, पारस अरोड़ा, कृष्ण गोपाल शर्मा, प्रेमजी प्रेम आदि प्रमुख है। आजादी के बाद आये बदलाव को तीखे व्यंग्य के रूप में अंकित करने वाली तेजसिंह जोधा की कविता 'ई गाव मे कठेई की व्हैगो' सशक्त रचना है।

प्रमुख हास्य-व्यंग्य कवियो का परिचय इस प्रकार है—

विश्वनाथ शर्मा विमलेश—आपका जन्म 5 अप्रैल 1927 को झुंझुनू में हुआ। आपने हिन्दी एवं राजस्थानी भाषा मे कविताएं लिखीं। हिन्दी में कविता, गीत और प्रबंध काव्य लिखा तो राजस्थानी में रामकथा लिखी। विमलेश की हास्य-व्यंग्य कविताओ मे 'सतपकवानी', 'छेड़खानी', 'कुचरनी', 'टसकोली', 'नौरस में हास्य रस', 'लोकप्रिय जनता दरबार' और 'खरी मसखरी' संग्रह प्रकाशित हुए है। विमलेश मूल रूप मे लोकप्रिय मंचीय कवि है इसलिए उनकी कविता में कही विशुद्ध हास्य है तो कही पैना व्यंग्य। ठेठ शेखावाटी की सरल भाषा, व्यंग्यपूर्ण शब्द-चयन और विषयगत विविधता विमलेश की काव्यगत विशिष्टता मानी जा सकती है। राजस्थानी भाषा को मंच पर लोकप्रिय बनाने में विमलेश का योगदान महत्त्वपूर्ण कहा जायेगा।

बुद्धिप्रकाश पारीक—आपका जन्म 31 दिसम्बर 1922 को जयपुर में हुआ। राजस्थानी हास्य कवियो मे बुद्धि प्रकाश का अपना अलग स्थान है। ठेठ ढूंढाड़ी भाषा के लहजे मे प्रस्तुत आपकी रचनाओं मे निम्न, मध्यमवर्गीय समाज की गरीबी, अनैतिकता, कृत्रिमता, भ्रष्टाचार, रिश्वतखोरी आदि पर तीखा व्यंग्य है। चबड़का (1961), चूंटक्या (1964), तिरना (1961), 'हलकार', 'इन्दर सूं इन्टरव्यू' आदि आपकी हास्य-व्यंग्यात्मक कविता संग्रह हैं।

अन्य व्यंग्य कवियो मे पन्नालाल सुमन, करणीदान बारहठ, विनोद सोमन, भँवर बैरागी, सम्पतसिंह, भगवतीप्रसाद चौधरी, (मुरण स्यारणी), हरफूलसिंह रसिक आदि दिखाई देते हैं।

नयी कविता :

परम्परागत राजस्थानी कविता में सन् 1960 के बाद कथ्य और शिल्प की दृष्टि से परिवर्तन उपस्थित हुआ। इस परिवर्तन के पीछे युग की बदलती संवेदना और परिस्थितियों का गहरा दबाव था। सन् साठ के बाद राजनीतिक स्तर पर भ्रष्टाचार, भाई-भतीजावाद, गुटबंदी, नौकरशाही, प्रान्तीयता की भावना थी तो सामाजिक क्षेत्र में गरीबी, बेरोजगारी, टूटते मूल्य, बिखरते मानवीय सम्बन्ध, अराजकता और भटकाव की स्थिति थी। इन अस्थिर, असन्तुलन और निराशा से परिपूर्ण स्थितियों ने असंतोष को जन्म दिया, जिसके कारण व्यवस्था के प्रति आक्रोश का भाव पैदा हुआ इसलिए सन् साठ के बाद की परिस्थितियों ने युवा रचनाकारों को प्रभावित किया जिसके कारण उनकी संवेदना और शिल्प-विधान में बदलाव

आया। यद्यपि पिछली पीढ़ी (सन् साठ के पूर्ववर्ती) के कवियों ने काव्य शिल्प के स्तर पर नयी कविताएं लिखना प्रारम्भ भी किया लेकिन वे युग सन्दर्भों से उत्पन्न भावबोध को अनुभूति के धरातल पर आत्मसात नहीं कर पाये।

वैसे राजस्थानी कविता में नानूराम संस्कर्ता की लिखी समय, बायरो' (1953) मुक्त छंद की प्रथम कृति है। इसके बाद नारायणसिंह भाटी का 'दुर्गादास' (1956) भी मुक्त छंद में लिखा गया लेकिन इनमें शिल्पगत नवीनता होते हुए भी युग यथार्थ की संवेदना का अभाव है फलतः नयी कविता की शुरूआत सन् 60 के बाद की कविताओं से ही मानी जानी चाहिए। सन् 1971 में डॉ. तेजसिंह जोधा ने 'राजस्थानी ग्रेक' नाम से नयी कविता की त्रैमासिक पत्रिका का प्रकाशन किया था जिसमें पहली बार राजस्थानी नयी कविता के कुछ कवियों की रचनाओं को प्रकाशित करते हुए इस बात को रेखांकित किया था कि राजस्थानी कविता कथ्य और शिल्प की दृष्टि से परम्परागत कविता से बिलकुल भिन्न है और यह भिन्नता ही उसकी नवीनता को प्रमाणित करती है। इस पत्रिका के सम्पादकीय की तीखी प्रतिक्रिया भी हुई, खैर कुछ भी हो आज सन् 60 के बाद की राजस्थानी कविता नयी कविता के रूप में अपने को स्थापित करने में समर्थ हुई।

'राजस्थानी ग्रेक' के सम्पादकीय में राजस्थानी नयी कविता की संवेदना और शिल्प की तरफ से भी संकेत किया है। नया कवि मूल रूप में जीवन के प्रति आस्थावादी दिखाई देता है। वह जीवन की सभी चुनौतियों को स्वीकारता हुआ उनसे जूझता है, उन क्षणों को जीता है और उनके संवेदनात्मक रूप को ईमानदारी से कविता में प्रकट करता है अतः उसका स्वर स्वीकार का है, नकार का नहीं। नये कवि ने जीवन सत्य को यथार्थ के जिस धरातल पर देखा है उसके पीछे उसकी कोई प्रतिबद्ध दृष्टि नहीं अर्थात् वह जीवन को जीवन के रूप में, उसके यथार्थ में देखता है और ऐसा देखने के पीछे सहज मानवीयता है कोई विशेष विचार दृष्टि नहीं।

अन्य दूसरी भाषाओं की नयी कविता की तरह राजस्थानी नयी कविता में भी अनुभूति की सच्चाई है। युग बोध से सम्पृक्त कवि अपनी अनुभूति को अभिव्यक्त कर रहा है। जीवन का प्रत्येक क्षण उसकी चेतना को प्रभावित करता है क्योंकि क्षण बोध उसके शाश्वत हैं इसलिए नयी कविता क्षणों में अनुभूत होने वाली प्रत्येक मनःस्थिति को साकार रूप में प्रकट करती है। इस दृष्टि से कुछ कविताएं छोटी भी हैं तो कुछ लम्बी। गोरधनसिंह शेखावत (किरकर), ओंकार पारीक (नैनी कवितावां), सावर दइया (हाइकू) आदि ने कुछ क्षणों की मनःस्थिति को किसी बिम्ब के माध्यम से प्रकट करने की कोशिश की है तो तेजसिंह जोधा (कटैई की व्हैगो है, म्हारा बाप), गोरधनसिंह शेखावत (खुद सूं खुद री बातां), नंद भारद्वाज (सुनसान गाथा, अंधार पख), प्रकाश परिमल (आ, ग्रेकर सी तो आ, म्हारा

सागोतर), पारस अरोड़ा (चपारो) आदि ने जीवन की संश्लिष्टता को लम्बी कविताओं के माध्यम से प्रकट किया है।

जीवन सत्य की तीखी अभिव्यक्ति ग्रामीण परिवेश को लेकर लिखी कविताओं में अधिक है। यद्यपि कुछ कवियों ने शहरी जीवन की संवेदना को भी चित्रित किया है। आजादी के बाद ग्रामीण चेतना के टूटते-बिखरते रूपों की यथार्थ अनुभूति राजस्थानी नयी कविता में अधिक मुखरित हुई है। ऐसी कविताओं में तेजसिंह जोधा की 'कठेई की हुंगो है', गोरधनसिंह शेखावत की 'गांव' और 'पनजी माळ',नंद भारद्वाज की 'सूनै गाव रै उपरासर' तथा 'म्हैं अर म्हारो गांव' पारस अरोड़ा की 'जुड़ाव' आदि कविताओं को देखा जा सकता है। मणि मधुकर, हरमन चौहान, पुरुषोत्तम छंगाणी में आज की संवेदनाएं शहरी परिवेश की हैं। लोकजीवन की ताजगी, बदलता परिवेश और शिल्पगत विविधता नयी कविता की शक्ति बनकर आई है इसीलिए नये कवियों ने आधुनिक जीवन की जटिलतम अनुभूतियों को प्रकट करने के लिए बिम्बात्मकता, प्रतीक योजना और नये विशेषण तथा नये उपमान भी अपनाये हैं। सपाट भाषा में भी अनुभूति के अनुरूप गहरे अर्थों को व्यंजित करना राजस्थानी नयी कविता की विशेषता कही जायेगी। इस तरह नये कवि ने रचनात्मक स्तर पर व्यक्ति और परिवेश की भीतरी समस्याओं और चुनौतियों को पहचाना तथा एक ईमानदार रचनाकार की हैसियत से उन्हें सम्दर्भगत रूप में समग्रता के साथ प्रकट किया। नये कवि की जीवन यथार्थता के प्रति यह नयी दृष्टि थी और इसी से नयी कविता की वह विकास यात्रा है जो पूर्ववर्ती कविता से अपने को अलग करती है।

राजस्थानी के नये कवियों का अपना संवेदन अपना अनुभव और अपना सोच भी रहा है इसलिए प्रत्येक की कुछ उपलब्धियां भी हैं तो कुछ खामियां भी। राजस्थानी के नये कवियों का परिचय इस प्रकार है—

तेजसिंह जोधा—आपका जन्म 7 जुलाई 1950 को रणसीसर (नागौर) में हुआ। आप राजस्थानी के समर्थ एवं अग्रणी युवा कवि हैं। राजस्थानी कविता में बदलाव की तरफ ध्यान आकृष्ट करने वाले और अपनी लम्बी कविताओं के नये कथ्य और शिल्प से अपनी पहचान बनाने वाले तेजसिंह जोधा पहले कवि हैं। आप कवि के साथ समीक्षक एवं पत्रकारिता में भी गहरी रुचि रखते हैं। 'राजस्थानी-एक', 'दीठ' और 'हथाई' जैसी साहित्यिक पत्रिकाओं का सम्पादन किया तो 'माणक' जैसी व्यावसायिक पत्रिका के सम्पादन में ख्याति भी प्राप्त की।

तेजसिंह जोधा की काव्य यात्रा 'ओळू री ओल्यां' (1970) काव्य कृति से प्रारम्भ होती है। संवेदना और बौद्धिकता का समन्वय जोधा की कविताओं की विशिष्टता कही जायेगी। 'कठेई की हुंगो है', 'म्हारा बाप' और 'दीठाव रै वेजां माय' उनकी सशक्त चर्चित कविताएं रही हैं। इन कविताओं में तेजसिंह जोधा ने जिस मुहावरे को ग्रहण किया है उसे आगे चलकर हिन्दी एवं राजस्थानी के कवियों

भी अपनायी। प्रभावोत्पादकता की दृष्टि से जोशी की कविताओं का अपना महत्व रूप है। दीठाव रै बेजां मांय' कविता का एक अंश देखिए—

मां!
वो कैड़ो सपनो हो मां
के जिको थनै, ढलती रात रा तड़गो
सद, जद म्हे गरभ में हो
अेक अटपटाटी रै मांय, तैं घ्हेतोड़ी
मां, कीं अैड़ो ई तो हो वो सपनो, के जिणरो जिकर
थूं घणा दिन पछै ताई करती ही।

मणि मधुकर—इनका जन्म सितम्बर, 1942 को राजगढ़ (चूरू) में हुआ। मणि मधुकर हिन्दी एवं राजस्थानी भाषा के नये कवियों में विशिष्ट है। गीतों से काव्य यात्रा प्रारम्भ करने वाले मणि मधुकर ने आधुनिक जीवन की संवेदनाओं को नये सन्दर्भों में प्रस्तुत किया है। शिल्प का चमत्कार मधुकर की अपनी खासियत है जिसके कारण उनकी कई कविताएँ संवेदनाहीन दिखाई देती हैं। 'कालो घोडो', 'नरक बाड़ो', 'सोजती गेट', 'अम्बादास रो चितराम', मधुकर की चर्चित कविताएँ रही है। 'पगफेरा' आपकी नयी कविताओं का सकलन है।

गोरधनसिंह शेखावत—इनका जन्म सन् 1943 में झुन्झुनू जिले के 'गुड़ा' गाव में हुआ। आप राजस्थानी नयी कविता के प्रमुख कवि हैं। 'किर कर' (1971) और 'पनजी मारू' (1988) आपके दो कविता संग्रह है। कविता के अतिरिक्त आपने 'तीसमारखा' (1988) एवं 'बस्ती राम' (1989) नाटक भी लिखे है। ग्रामीण परिवेश के विविध आयामो के अलावा आपकी कविताओं में आज के व्यक्ति का सघर्ष और उसकी जटिल अनुभूतियो का सजीव चित्रण है। 'पनजी मारू', 'काल', 'जूंझार', 'मुरझायोड़ो पल', 'गाव' आदि चर्चित कविताएँ हैं।

पारस अरोड़ा—आपका जन्म 1937 मे अजमेर में हुआ। कविता के साथ गद्य विधा में उपन्यास (खुलती गाठा) डायरी आदि लिखी। 'जाणकारी' नाम से नवबोध की द्वैमासिक पत्रिका का सम्पादन भी किया। 'झल' और 'जुड़ाव' आपके दो कविता सग्रह प्रकाशित हुए है। पारस आधुनिक जीवन की संवेदना को सोच के धरातल पर गहराई से अभिव्यक्त करने वाले समर्थ कवि हैं। उनकी कविताओं का परिवेश शहरी मध्यवर्गीय जीवन का परिवेश है। 'मन टूट्यो', 'फिर विद्रोह' और 'बधापो' आपकी चर्चित रचनाएँ रही हैं।

नन्द भारद्वाज—आपका जन्म 9 अगस्त, 1948 को बाड़मेर जिले के माडपुरा गाँव में हुआ। आपने हिन्दी एवं राजस्थानी मे कविता, कहानी, नाटक, एकांकी, आलोचना आदि लिखे है। 'हरावल' जैसी साहित्यिक राजस्थानी मासिक पत्रिका का सम्पादन भी नन्द भारद्वाज ने किया। 'अंधार पंख' (1974) नाम से आपका राजस्थानी कविताओं का प्रथम संग्रह प्रकाशित हुआ है। नन्द भारद्वाज का प्रगतिवादी दृष्टिकोण ग्रामीण परिवेश और मानवीय समस्याओं के साथ जुड़ना हुआ दिखाई देता है। 'अन्धार पख' की कविताएँ जहाँ सवेदनाएँ अंगीत करती हैं, वहीं हमें

एक विचार स्थिति में भी पहुँचाती हैं। राजस्थानी की नयी कविता में नन्द भारद्वाज का महत्त्वपूर्ण स्थान है।

चन्द्रप्रकाश देवल—आपका जन्म संवत् 20 6 में उदयपुर जिले के गोटीपा गाव में हुआ। देवल कवि और कहानीकार हैं। 'पागी' (1977) और 'कावड़' (1987) देवल के दो प्रमुख कविता संग्रह है। लोक जीवन की सहजता के साथ-साथ देवल की कविता में आज के ग्राम आदमी की तकलीफो एवं उसकी चुनौतियो का यथार्थ चित्रण है। बिम्ब और प्रतीकों की नवीनता देवल की कविता को रचनात्मक दृष्टि से बल प्रदान करती है। आपकी कविताओ के शिल्प में ताजगी और सहजता है।

ओंकार पारीक—आपका जन्म 76 मार्च, 1934 को बीकानेर में हुआ। आपने हिन्दी एव राजस्थानी मे कविताएँ लिखीं। ओंकार पारीक की कविताओं में आधुनिक जीवन की विषमतियों पर तीखा व्यग्य है। क्षण बोध की अनुभूति के रूप मे आपने 'तेली कविताना' भी लिखी। इन कविताओं में इनका अपना चिन्तन है। मधुमती और जागती जोत जैसी पत्रिकाओं के सम्पादन के बाद आप अब 'माणक' से सम्बद्ध है।

इसमे कोई सन्देह नही कि आधुनिक राजस्थानी काव्य में नयी कविता विशेष चर्चित रही है तथा अन्य विधाओ की तुलना में कविता अधिक लिखी गई है। आज नयी कविता में काफी लोग लिख रहे हैं जिनमे पूर्ववर्ती पीढ़ी के कवि भी शामिल हैं यथा—कन्हैयालाल सेठिया, नारायणसिंह भाटी और सत्यप्रकाश जोशी। नयी पीढ़ी के रचनाकारों मे कृष्णगोपाल शर्मा (चेतन री धाणी) पुरुषोत्तम छंगाणी (सामा रो सूत), भगवतीलाल व्यास (अणहद नाद), श्री गोपाल जैन (काल.चेतना रो चतुर्भुज), अर्जुनदेव चारण(रिपरोही), मोहन आलोक (ग-गीत), श्याम महर्षि(उकलती ओकल), चेतन स्वामी, प्रेमजी प्रेम, सावर दइया, हरीश भादाणी (बाथां में भूगोल), भाईदान सिंह भाटी (हततोडा होठां रो साच), रामस्वरूप परेश, रमेश मयंक, मानसिंह शेखावत (मुवो समदर), प्रकाश परिमल, अन्नाराम सुदामा (पिरोळ में कुत्ती ब्याई), शिवराज छगाणी, मीठेस निर्मोही, माणक तिवारी 'बन्धु', रामेश्वर दयाल श्रीमाली, सत्येन जोशी, आदि है।

इस तरह राजस्थानी नयी कविता कथ्य और शिल्पगत विविधता को लिये हुए युग बोध के नये आयामों की ओर अग्रसर है।

मूल्यांकन—आधुनिक राजस्थानी कविता के अध्ययन से स्पष्ट है कि दार्शनिक काल मे जहाँ एक ओर परम्परागत काव्य लिखा गया, वहीं सन् 1857 की क्रान्ति के फलस्वरूप कुछ ऐसे कवि भी आये जिन्होने युग कवि के रूप में अपनी भूमिका निभाई। आजादी के बाद जिस नवीन परिवेश का उदय हुआ, उसने काव्य की चेतना को धीरे-धीरे प्रभावित किया। इसके कारण एक तरफ जहाँ राष्ट्रीय, सांस्कृतिक और वैयक्तिक गीति प्रधान काव्य धारा का विकास हुआ तो दूसरी तरफ प्रकृति, हास्य-व्यंग्य और नयी कविता का। नयी कविता टूटते मूल्यो, बिखरते मानवीय सम्बन्धों, भ्रष्ट व्यवस्था

और असन्तोष की कविता थी जो अपने परिवेशगत यथार्थ को रचनात्मक धरातल पर गहराई से अभिव्यक्त कर रही थी। सन् 1960 से पूर्व की पीढ़ी में जहाँ शाश्वत मानवीय मूल्यों और सांस्कृतिक बोध का स्वर प्रधान था तो राजस्थानी की नयी कविता में अनुभूति, दृष्टि और शिल्प का ऐसा नयापन था जो उसे पूर्ववर्ती कविता से अलग करता था। जीवन सत्यों की यथार्थ के धरातल पर तलाश और अभिव्यक्ति के सार्थक रूपों में अन्वेषण नयी कविता का अपना रचनात्मक संघर्ष था।

राष्ट्रीय और सांस्कृतिक धारा के अन्तर्गत काव्य संवेदना को एक व्यापक आयाम मिला जिसके कारण 'दुर्गादास', 'मीरा', 'बोल भारमली', 'लीलटांस', आदि अनुपम काव्य कृतियां राजस्थानी को मिली तो दूसरी तरफ बादली, लू, सांझ और मेघमाल जैसी प्रकृति काव्य की विशिष्ट रचनाएँ भी।

प्रगतिवादी काव्य ने सामाजिक विषमता और विसंगतियों को पहचानते हुए तीखे स्वर में युगीन परिवेश को अभिव्यक्ति दी। राजस्थानी में प्रगतिवाद न आन्दोलन बना तो न किसी तरह का नारा। प्रगतिवादी चिन्तन एक समय की काव्यात्मक उपलब्धि होते हुए भी अपनी काव्य धारा को विचार के धरातल पर अधिक आगे नहीं बढ़ा सका। नयी कविता समकालीन परिवेश से जुड़कर जिस यथार्थ चेतना को रूपायित कर रही थी, वहाँ प्रगतिवादी स्वर का आयाम भी कई रचनाओं में बराबर हो रहा था। इस दृष्टि से 'ओलू री ओल्यां', पगफेरो, अधार पख, झल, पाणी, पनजी मारू आदि नयी कविता की उपलब्धि परक कृतियां मानी जायेगी। इस तरह सूर्यमल्ल मिश्रण और शंकरदान सामौर से प्रारम्भ आधुनिक राजस्थानी कविता भावबोध, चिन्तन और शिल्प के रूप में विकसित होती गई।

गद्य साहित्य

राजस्थानी का गद्य साहित्य प्राचीन एवं काफी समृद्ध है और ऐसा प्रतीत होता है कि राजस्थानी में चौदहवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध से ही राजस्थानी गद्य प्रारम्भ हो चुका था तथा 16वी व 17वी शताब्दी तक वह उन्नत अवस्था को प्राप्त हो चुका था। प्राचीन गद्य साहित्य को निम्नलिखित रूप में बांटा जा सकता है[1]—

1. अनुमानतः राजस्थानी गद्य का प्रारम्भ तेरहवी शताब्दी के मध्य से हुआ।

— राजस्थानी भाषा और साहित्य : मोतीलाल मेनारिया, पृ. 73.

(क) 10वी व 11वी शताब्दी से राजस्थानी में अबाध गति से गद्य लिखा जा रहा है।

—राजस्थानी भाषा और साहित्य और संस्कृति : डा रामप्रसाद दाधीच, पृ. 24.

(ख) राजस्थानी गद्य 13वी शताब्दी से आधुनिक काल तक अविच्छिन्न रूप में उपलब्ध होता है।

—राजस्थानी साहित्य का इतिहास : डा पुरुषोत्तम मेनारिया

(ग) राजस्थानी गद्य की परम्परा चौदहवी शताब्दी से निरन्तर प्रवहमान है।

—सांस्कृतिक राजस्थान : स. रतनशाह, पृ 53

1. धार्मिक गद्य
2. ऐतिहासिक गद्य
3. कलात्मक गद्य
4. अन्य रूप

धार्मिक गद्य—गद्य के विकास में जैन साधुओं का योगदान उल्लेखनीय है। इन्होंने अपने धर्म के प्रचारार्थ एवं अपने उपदेशों को लोकप्रिय बनाने के लिए धर्म कथाएँ लिखी। वैसे देखा जाय तो ये कथाएँ मौलिक न होकर धार्मिक ग्रन्थों की टीकाएँ थी। ऐसी टीकाएँ दो रूपों में मिलती है—

1. बालाव बोध और 2. टब्बा।

1. बालाव बोध—ये सरल और सुबोध टीका होती थी जिसे कोई भी सामान्य व्यक्ति अच्छी प्रकार से समझ सकता था जैन धर्म से सम्बन्धित अग, उपांग, मूल सूत्र, चरित आदि को लेकर कई बालावबोध टीकाएं लिखी गई। इसमें मूल की व्याख्या के साथ जन धर्म के सिद्धान्तों को सरल रूप में समझाने के लिए कई कथाएं हुआ करती थी। जैनधर्म मे ऐसे सैकड़ो बालावबोध उपलब्ध होते हैं।

2. टब्बा—यह बालावबोध से संक्षिप्त होता था तथा इसमें मूल शब्द का अर्थ उसके ऊपर, नीचे या पार्श्व में लिखा जाता था। संवत् 1930 मे लिखित 'अराधना' नामक टिप्पणी को गद्य का सबसे प्राचीन उदाहरण माना गया है। चौदहवी शताब्दी के गद्य के अन्य नमूने सग्रामसिंह रचित बाल शिक्षा (सं. 1936), नवकार-व्याख्यान (सं. 1958) आदि मे पाये जाते हैं।

धार्मिक गद्य मे आचार्य तरुण प्रभसूरि का 'षड़ावश्यक बालावबोध, (स. 1411) राजस्थानी गद्य की प्रथम प्रौढ़ कृति मानी जा सकती है। अन्य बालावबोधकारो मे सोमसुन्दर सूरि, मेरू सुन्दर, पार्श्वचन्द्र आदि प्रमुख हैं। धर्मकथाओं मे माणिकचन्द्र सूरि द्वारा लिखित 'पृथ्वीचन्द्र चरित्र' (सं. 1478) एक प्रौढ़ कलात्मक कृति है इसका दूसरा नाम वाग्विलास भी है।

धार्मिक साहित्य दो शैलियो में मिलता है—एक जैन शैली और दूसरी जैनेतर शैली।

ऐतिहासिक गद्य—धार्मिक गद्य के बाद ऐतिहासिक गद्य की शुरुआत हुई। ऐतिहासिक गद्य मे ख्यात, बात, वंशावली, पट्टावली, पीढियावली, पोठियावली, विगत हकीमत, हाल आदि मिलते हैं। 'ख्यात' मे सामान्य रूप में राजाओं का वंशानुक्रम लिखा गया है। तत्कालीन शासक स्वयं अपना इतिहास इन ख्यातो के माध्यम से लिखवाते थे इसलिए इनमे अतिरंजनापूर्ण प्रशंसा भी है फिर भी ऐतिहासिक तथ्यों की दृष्टि से ये महत्त्वपूर्ण मानी जाती है। आज भी राजस्थान के इतिहास के सन्दर्भ मे मुहणोत नैणसी, आसिया बाकीदास और दयालदास की ख्यात प्रसिद्ध है। 'पट्टावली',

में आचार्यों के जन्म, दीक्षा आदि का विवरण तथा 'दफ्तर बही' एक प्रकार की डायरी शैली में लिखी जाने वाली रचना थी। 'वात' के सैकड़ों संग्रह मिलते हैं जिनमें प्रसिद्ध व्यक्तियों की ऐतिहासिक बातें प्रस्तुत की गई हैं।

ऐतिहासिक गद्य भी दो शैलियों में लिखा गया—जैन शैली और चारण शैली। जैन शैली की भाषा सीधी सरस है तो चारण शैली की भाषा परिष्कृत।

कलात्मक गद्य—कलात्मक गद्य की दृष्टि से राजस्थानी साहित्य का अपना महत्व है। कलात्मक गद्य मुख्य रूप से वचनिका, दवावैत, सिलोका, वर्णक और वात के रूप में मिलता है। वचनिका गद्य-पद्य मिश्रित रचना है। आदर्श वचनिका में आधा गद्य होता है तथा वह गद्य भी तुकान्त होता है। इसमें अपभ्रंश मिश्रित राजस्थानी भाषा दिखाई देती है। यद्यपि राजस्थानी में वचनिका साहित्य प्रचुर रूप में मिलता है फिर भी दो वचनिकाएं काफी प्रसिद्ध हैं। एक गाडण शिवदास की लिखी हुई 'अचलदास खींची री वचनिका' जो चारण शैली की प्रथम प्रौढ़ और महत्वपूर्ण रचना है तथा दूसरी खिड़िया जग्गा की वचनिक राठौड़ रतनसिंघ महेसदासोत री'।

'अचलदास खींची री वचनिका' में गागरोन गढ़ के स्वामी अच्लदास खींची और मांडूपति सुल्तान होशंगशाह का युद्ध, जौहर और अंत में अचलदास खींची का वीरगति प्राप्त करना दिखाया है। यह युद्ध स. 1480 में हुआ। इसमें युद्ध और जौहर के वर्णन प्रभावशाली हैं।

'वचनिका राठोड़ रतनसिंघ महेसदासोत री' में औरंगजेब और जसवन्तसिंह के बीच उज्जैन में होने वाले युद्ध (सं 1716) में राठोड़ रतनसिंह के वीरतापूर्ण युद्ध एवं बलिदान का वर्णन किया गया है।

कलात्मक गद्य में दवावैत भी उपलब्ध होती हैं। इन दवावैत की भाषा राजस्थानी मिश्रित खड़ी बोली (उर्दू) होती थी। इनका गद्य भी वचनिका की तरह तुकान्त होता था। दवावैत में पद्य भाग कम मिलता है। दवावैत में भाट मालीदास की लिखी 'नरसिंहदास की दवावैत' काफी प्रसिद्ध है जो 18वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में लिखी हुई है।

कलात्मक गद्य का एक रूप 'सिलोका' है। इसमें भी अन्त में तुक मिलती है तथा इसकी प्रश्नोत्तर रूप में एक शैली है। 'वर्णक' रूप में विभिन्न वस्तुओं का वर्णन है। 'सभा-शृंगार' ऐसा ही वर्णक ग्रंथ है। कलात्मक गद्य का अन्तिम रूप वात है और यह राजस्थानी साहित्य में विपुल मात्रा मे मिलती है। ये वात भी गद्यमय पद्यमय और गद्य पद्यमय रूप में मिलती हैं। इनके विषय ऐतिहासिक, पौराणिक और काल्पनिक दिखाई देते हैं। 'वात' के कहने की अपनी शैली है। प्रसिद्ध वातों में कुंवर रणमल री वात, राजा नरसिंघ री वात, बिणजारा री वात, साहूकार री वात आदि है।

अन्य रूप—उपर्युक्त गद्य रूपों के अतिरिक्त राजस्थानी गद्य, का प्रयोग शिलालेखो, पट्टे परवानों, पत्रों आदि में भी मिलता है। इसी तरह वैद्यक, ज्योतिष, योगशास्त्र, व्याकरण आदि ग्रन्थों में भी गद्य का रूप दिखाई देता है :

इस तरह राजस्थानी गद्य की प्राचीन परम्परा काफी समृद्ध रही है। यह गद्य साहित्य, इतिहास, संस्कृति और सामाजिक जीवन की सांगोपांग तस्वीर प्रस्तुत करता है।

आधुनिक काल का गद्य साहित्य

राजस्थानी का प्राचीन गद्य साहित्य तो समृद्ध रहा है लेकिन उसकी तुलना में आधुनिक काल का गद्य साहित्य कम मात्रा में है। आज धीरे-धीरे अन्य गद्य विधाओं में रचनात्मक साहित्य लिखा जा रहा है। आधुनिक गद्य साहित्य की प्रमुख विधाओं में उपन्यास, कहानी, नाटक, एकांकी, निबन्ध, समालोचना आदि हैं। इन गद्य विधाओं की प्रगति को इस प्रकार देखा जा सकता है—

उपन्यास—राजस्थानी भाषा में सबसे पहला उपन्यास शिवचन्द्र भरतिया का लिखा हुआ 'कनक सुन्दर' (1903) उपलब्ध होता है। इसके लिए लेखक ने गुजराती में प्रचलित 'नवल कथा' शब्द का प्रयोग किया है। दो परिवारों के जीवन दृष्टिकोण पर आधारित यह एक आदर्शवादी उपन्यास है। एक मारवाड़ी परिवार अपनी फिजूल खर्ची, अशिक्षा और शान-शोकत में फंसा रहता है तो दूसरा परिवार इनसे मुक्ति पाकर युगानुकूल जीवन जीने के लिए तत्पर है।

'कनक सुन्दर' के बाद श्रीनारायण अग्रवाल का 'चाचा' (1925) राजस्थानी का दूसरा उपन्यास है। यह भी सामाजिक उपन्यास है तथा इसमें 'वृद्ध विवाह' की समस्या को उठाया गया है।

इन दोनों उपन्यासों की विषय वस्तु और शिल्प पर विचार करें तो प्रतीत होता है कि ये सोद्देश्य लिखे हुए उपन्यास हैं तथा इनका लक्ष्य समाज सुधार की भावना रहा है। तत्कालीन रचना-दृष्टि से भी ऐसे उपन्यासों का लेखन स्वाभाविक प्रतीत होता है क्योंकि उस समय अन्य भारतीय भाषाओं में भी समाज सुधार की भावना से प्रेरित होकर उपन्यास लिखे जा रहे थे इसलिए समाज सुधार, आदर्श परिवार और कुरीतियों का खण्डन; इन उपन्यासों का मुख्य उद्देश्य था।

इन दो उपन्यासों के बाद उपन्यास लेखन में एक लम्बा अन्तराल दिखाई देता है तथा स्वतन्त्रता के बाद सन् 1956 में श्रीलाल नथमल जोशी का 'आभै पटकी' उपन्यास प्रकाशित होता है। इसे स्वातन्त्र्योत्तर काल का पहला उपन्यास कह सकते है। इस उपन्यास में विधवा विवाह की समस्या को उठाया गया है। सेठ दीनदयाल की बेटी किसना जब विधवा हो जाती है तो उसका देवर मोहन उससे शादी करता है, इससे समाज में हंगामा मच जाता है और मोहन को समाज से बहिष्कृत कर दिया जाता है। इस उपन्यास में भी सामाजिक समस्या का समाधान आदर्श रूप में प्रस्तुत किया गया है।

श्रीलाल नथमल जोशी के दूसरे उपन्यास 'धोरां रो धोरी' (1968) और 'एक बीनणी दो बीन' (1973) हैं। 'धोरां रो धोरी' राजस्थानी भाषा और साहित्य

से गहरा लगाव रखने वाले इटली निवासी डॉ टैसीटोरी की जीवनी पर आधारित है। इस उपन्यास में भी लेखक का आदर्शवादी दृष्टिकोण दिखाई देता है। 'एक बीनणी दो बीन' उपन्यास अंग्रेजी भाषा के कवि टेनीसन की लम्बी कविता ईनक गार्डन के कथानक पर आधारित है। किसी परिवेश और संस्कृति को जिये बिना उसे उपन्यास का आधार बनाना महज किसी आदर्श को प्रस्तुत करने का लोभ ही कहा जा सकता है और यह जोशी के दोनों उपन्यासों की सीमा है।

अन्नाराम सुदामा की कथा चेतना अपने परिवेश से गहरी जुड़ी हुई है लेकिन उनका आदर्शवादी रुझान उनके सभी उपन्यासों में दिखाई देता है। 'मैकती काया: मुलकती धरती' (1966) में सुथारी नानी की पीड़ा को आत्मकथात्मक शैली में अभिव्यक्त किया गया है। राजस्थानी जन-जीवन की भीतरी झांकी और धरती प्रेम की काव्यमय भावनाओं के कारण इसमें रोचकता आ गई है।

सुदामा का दूसरा उपन्यास 'आंधी और आस्था' (1974) है जिसमें राजस्थान के गंवई जीवन, अकाल और अपनी इज्जत के लिए संघर्ष करते हुए जगन्नाथ की कथा है। गरीबी, बेरोजगारी, सेठ की व्यभिचारी प्रवृत्ति, सरपंच का ईर्ष्या-द्वेष पूर्ण व्यवहार, जगन्नाथ द्वारा सेठ की हत्या, जेल और जेल से मुक्ति। जगन्नाथ विपत्तियों की आंधी से जूझता है लेकिन वह अपने परिवार और जमीन के प्रति आस्था नहीं छोड़ता।

अन्नाराम सुदामा के अन्य उपन्यासों में 'मैवै रा रूंख' (1977) 'डंकीजता मानवी' और 'घर संसार' (दो भाग) है। 'मैवै रा रूंख' उपन्यास आपातकाल की स्थितियों को लेकर लिखा गया उपन्यास है। आपातकाल में किस प्रकार गावों में जबरन नसबंदी हुई तथा उसके आतंक ने किस प्रकार गाव वालों को सन्त्रस्त कर दिया, इस स्थिति का यथार्थ चित्रण इस उपन्यास में है। वैसे मूल रूप में यह उपन्यास गंवई जीवन में साहूकार की स्थिति को चित्रित करता है। 'डंकीजता मानवी' उपन्यास सेठ की शोषण प्रवृत्ति का पर्दाफाश करता है तो 'घर संसार' उपन्यास में दहेज के लोभी सास-श्वसुर से संघर्ष करती हुई 'सुधा' (मुख्य पात्रा) दिखाई देती है। यह उपन्यास आज की ज्वलंत सामाजिक समस्या और नारी की संघर्षशील चेतना को प्रस्तुत करता है।

यादवेन्द्र शर्मा 'चन्द्र' ने 'हूं गोरी किण पीव री' (1970) और 'जोग-संजोग' (1971) उपन्यास लिखे हैं। ये दोनों सामाजिक उपन्यास हैं। 'हूं गोरी किण पीव री' में निम्न वर्ग की सुरजड़ी अपने पति के कलकत्ता चले जाने और वहां से मृत्यु का तार भिजवाने के कारण अपने देवर से नाता (पुनर्विवाह) कर लेती है लेकिन कुछ समय पश्चात् उसका पति जब कलकत्ता से वापस आ जाता है तो सुरजड़ी चक्कर में पड़ जाती है। इस संयोग के कारण सुरजड़ी की जिस अन्तर्द्वन्द्वपूर्ण मनःस्थिति का चित्रण किया गया है, वह स्वाभाविक एवं यथार्थवादी है। 'जोग-संजोग' उपन्यास महानगरीय परिवेश और स्थिति को लिए हुए है। नाना बटुक प्रसाद का लड़का

गणेश एक पंजाबी लड़की सुरजीत को चाहता है लेकिन धन के लोभ में आकर उसका पिता कृष्ण रतन से उसका विवाह कर देता है लेकिन एक दिन गणेश रतन के गहने और रुपये लेकर कलकत्ता आता है और एक क्रिश्चियन लड़की रीना से शादी कर लेता है। इधर सुरजीत अपने पति से परित्यक्त होकर गणेश के घर रहने लग जाती है। जब हैजे के कारण गणेश को मरने दिया, रतन और सुरजीत की मां के मरने की खबर मिलती है तो वह रीना को लेकर घर आता है तथा मां से शादी की बात बताता है उधर सुरजीत जहर खाकर आत्महत्या कर लेती है।

छत्रपतिसिंह का 'तिरसंकु' (1974) अनिश्चय और अनिर्णय के द्वन्द्व में फंसे पवन (नायक) की संघर्ष कहानी है। वह कभी गांव तो कभी शहर और फिर शहर से गांव इसी में भटकता रहता है। पवन में क्रान्ति की भावना है लेकिन उसका कोई स्थिर रूप उभर नहीं पाता। एक तरह लीना का देहगत आकर्षण और दूसरी तरफ दील की क्रान्तिकारी विचारधारा। पवन इनके बीच त्रिशंकु की स्थिति में है। उपन्यास में क्रान्ति की अपेक्षा रोमांस का अधिक चित्रण है।

सत्येन जोशी का 'कंवल पूजा' (1974) राजस्थानी का पहला ऐतिहासिक उपन्यास है। इस उपन्यास में तन्नोट के राजा विजयराज और महमूद गजनवी के बीच हुए युद्ध का वर्णन किया गया है। आंचलिक स्पर्श के कारण उपन्यास में नवीनता और रोचकता प्रतीत होती है।

विजयदान देथा के दो लोक उपन्यास 'तीडोराव' (1966) एवं 'मां रो बदलो' प्रकाशित हुए हैं। ये दोनो उपन्यास व्यंग्यात्मक शैली में लोक कथा के जरिये व्यक्ति और समाज की स्थिति पर तीखा प्रहार करते हैं। 'तीडोराव' प्रतीक है उन व्यक्तियों का जो अयोग्य होते हुए भी अपनी तिकड़म और छल प्रपंच से जीवन में आगे बढ़ जाते हैं। निस्सन्देह आज का युग तीडोराव जैसे लोगों का ही है। 'मां रो बदलो' उपन्यास सामन्ती व्यवस्था की विकृतियों पर कड़ा प्रहार है।

रामनिवास शर्मा का 'काल-भैरवी' (1976) गांवों में फैली तन्त्र मन्त्र की साधना और उसके प्रभाव को मनोवैज्ञानिक ढंग से चित्रित करता है। गांव के वातावरण में अब भी भैरव और भैरवी को देवयोनि से, अलग योनि स्वीकार किया जाता है। उपन्यास में ग्रामीण लोगों के भोलेपन और उनके अन्धविश्वासों का चित्रण किया गया है।

पारस अरोड़ा का उपन्यास 'खुलती गांठां' (1977) आधुनिक जीवन की समस्या को लेकर लिखा गया है। सहज और सरल शैली की यह प्रेमकथा अन्तर्जातीय विवाह में अपना समाधान ढूंढती है।

बी.एल. माली ने 'मिनख रा खोज' और 'अबोली' (1987) उपन्यास लिखे हैं। 'मिनख रा खोज' उपन्यास में जातिगत बन्धनों से मुक्ति के लिए तड़फते समाज का तो 'अबोली' में नारी जीवन की समस्या को, मौजूदा परिवेश में उभारा है।

इन उपन्यासों के अतिरिक्त कुछ उपन्यास लघु आकार में तो कुछ समय-समय पर 'हरावल', 'ओलमो', 'लाडेसर', 'राष्ट्र पूजा', 'हेलो' आदि पत्रिकाओं में भी प्रकाशित हुए हैं। इन उपन्यासों में सीताराम महर्षि के दो उपन्यास 'कुण समर्झ चंवरी रा बोल' और 'लालड़ी अकर फेरूं गमगी', डॉ नृसिंह राज पुरोहित का 'भगवान महावीर', दीनदयाल कुन्दन का 'गुंवार पाठो', रामदत्त सांकृत्य का 'आभल है' भूरसिंह राठौड़ का 'राती घाटी', प्रेमजी प्रेम का 'सेली छांव खिजूर की', किशोर कल्पना कान्त का 'याड़नी' मालचन्द तिवाड़ी का 'भोलावण', करणीदान बारहठ का 'मरवी री बेटी' आदि उल्लेखनीय हैं।

यहाँ अगर राजस्थानी उपन्यासों की विकास यात्रा पर विचार करें तो प्रतीत होता है कि 'कनक सुन्दर' से लेकर अब तक के उपन्यासों को प्रवृत्ति-भेद के आधार पर—सामाजिक, ऐतिहासिक, पौराणिक और राजनीतिक उपन्यास प्रमुख हैं। आदर्शवाद, घटनात्मक संयोग, इतिवृत्तात्मकता, समस्याओं का सतही चित्रण राजस्थानी उपन्यासों की कमजोरी कही जायेगी। 'कनक सुन्दर', 'चम्पा', 'मैकती काया मुलकती धरती', 'हूं गोरी किण पीव री' और 'जोग-संजोग' उपन्यास आदर्शवाद, सुधारवाद और एक ठोस विचार भूमि के अभाव में घटनात्मक रोचकता को लिए हुए हैं। गंवई जीवन का यथार्थवादी चित्रण और आंचलिकता इन उपन्यासों की प्रमुख विशेषता कही जायेगी। इस दृष्टि से अन्नाराम सुदामा, रामदत्त सांकृत्य, विजयदान देथा और सत्येन जोशी के उपन्यासों को देखा जा सकता है।

शिल्प की दृष्टि से देखें तो 'आभै पटकी', 'मैकती काया मुलकती धरती', 'आंधी और आस्था', 'हूं गोरी किण पीव री', 'तिरसंकू' आदि उपन्यासों में परम्परागत शिल्प का रूप दिखाई देता है। संयोग, घटनात्मकता और वर्णनात्मक शैली के कारण राजस्थानी के उपन्यास अब भी प्रेमचन्द युगीन संवेदना और शिल्प के दायरे में प्रतीत होते हैं। 'मैकती काया मुलकती धरती' में आत्मकथात्मक तो 'सीढ़ीराव' में प्रतीक शैली का प्रयोग हुआ है। भाषा की दृष्टि से इन उपन्यासों में सहजता और प्रवाह का अभाव है। अन्नाराम सुदामा की भाषा में गहरी व्यंजना, काव्यमयता और ठेठ राजस्थानी शब्दों, मुहावरों और कहावतों का सुन्दर प्रयोग है। विजयदान देथा की भाषा में कसाव और छत्रपतिसिंह की भाषा में काव्य की प्रधानता है।

इस तरह कहा जा सकता है कि राजस्थानी उपन्यास कथ्य और शिल्प की दृष्टि से बदलते युग बोध और जीवन की जटिलतम समस्याओं का साक्षात्कार करने में अभी अधूरे हैं। प्रमुख उपन्यासकारों का परिचय इस प्रकार है—

यादवेन्द्र शर्मा चन्द्र—आपका जन्म 13 अगस्त, 1932 को बीकानेर में हुआ। चन्द्र हिन्दी के प्रतिष्ठित कथाकार हैं, इधर चन्द्र ने राजस्थानी में भी कहानी, नाटक और उपन्यास लिखे हैं। 'हूं गोरी किण पीव री' और 'जोग संजोग' आपके

अब तक प्रकाशित दो उपन्यास हैं। चन्द्र के हिन्दी उपन्यासों में जिस युग बोध और प्रगतिशीलता का चित्रण हुआ है, वैसा राजस्थानी उपन्यासों में नहीं दिखाई देता।

श्रीलाल नथमल जोशी—आपका जन्म बीकानेर में सन् 1921 में हुआ। आजादी के बाद जोशी के उपन्यास 'आभै पटकी' से उपन्यासों की परम्परा प्रारम्भ होती है। 'आभै पटकी', 'धोरां रो धोरी', और 'एक बीनणी दो बीन' आपके प्रकाशित उपन्यास हैं।

अन्नाराम सुदामा—आपका जन्म उदयरामसर (बीकानेर) में हुआ। आप बहुमुखी प्रतिभा वाले हैं। आपने उपन्यास, कहानी, नाटक, कविताएं आदि लिखी हैं। राजस्थानी उपन्यासकारों में अन्नाराम सुदामा का विशिष्ट स्थान है। 'मैकती काया मुळकती धरती', 'आंधी अर आस्था', 'मेवै रा रूख' और 'घर संसार' आपके प्रकाशित उपन्यास हैं। सुदामा के उपन्यासों में लोक जीवन की गहराई, भाषा शैली की रोचकता और प्रगतिशील विचारधारा की झलक दिखाई देती है।

विजयदान देथा—आपका जन्म बोरूंदा (जोधपुर) में 1926 में हुआ। आपने राजस्थानी में कहानियां और उपन्यास लिखे हैं। लोक कथाओं को परिष्कृत भाषा और वैचारिक स्पर्श देने में देथा का योगदान महत्त्वपूर्ण है। 'मां रो बदलो', 'तीडोराव' देथा के दो लोक उपन्यास हैं जिनमें लोक कथाओं को आधार बना कर समाज व्यवस्था पर तीखा व्यंग्य किया गया है। लोक उपन्यासों में लोक कथा के सभी तत्त्व ज्यों के त्यों मौजूद हैं।

कहानी—राजस्थानी का बात साहित्य तो काफी समृद्ध है तथा उसकी प्राचीन परम्परा दिखाई देती है लेकिन कहानी आधुनिक विधा है। राजस्थानी उपन्यास और नाटक के प्रथम लेखक जिस प्रकार शिवचन्द्र भरतिया माने जाते हैं, ठीक उसी प्रकार कहानी के भी। भरतिया की प्रथम कहानी 'विश्रान्त प्रवास' सन् 1904 में कलकत्ते से प्रकाशित होने वाले 'वैश्योपकारक' हिन्दी-मासिक में प्रकाशित हुई। इसके बाद गुलाबचन्द नागौरी की 'बडी तीज', 'बेटी की बिकरी' और 'बहू की खरीदी' आदि कहानियां अलीगढ से प्रकाशित 'माहेश्वरी' पत्रिका में प्रकाशित हुई। नागौरी के बाद शिवनारायण तोशनीवाल की 'विद्यापरदेशतम्' तथा 'स्त्री शिक्षा को ओनामा' नासिक से प्रकाशित 'पचराज' में छपी। प्रवासी रचनाकारों द्वारा लिखी इन कहानियों में समाज सुधार और आदर्शवाद की छाप है।

इन कहानियों के बाद लगभग 20 वर्ष तक कोई कहानी नहीं लिखी गई। सन् 1935 के आसपास पुनः कहानी लेखन आरम्भ होता है जिसमें मुरलीधर व्यास, श्री चन्द्रराय माथुर आदि प्रमुख हैं। इन रचनाकारों को कहानी लिखने की प्रेरणा बंगला एवं हिन्दी भाषा से प्राप्त हुई। मुरलीधर व्यास का पहला कथा संग्रह 'बरस गांठ' सन् 1956 में प्रकाशित हुआ लेकिन इससे पूर्व व्यास की काफी कहानियां प्रकाशित हो चुकी थी। व्यास के बाद कहानी लिखने वालों में नानूराम संस्कर्ता, नृसिंह राजपुरोहित, बैजनाथ पंवार, श्रीलाल नथमल जोशी, डॉ. मनोहर शर्मा,

अन्नाराम सुदामा, दामोदर प्रसाद शर्मा, करणीदान बारहठ, रामेश्वरदयाल श्रीमाली, मूलचन्द प्राणेश, दीनदयाल ओझा, किशोर कल्पनाकान्त आदि हैं। इन कहानीकारों का प्रवृत्तिगत रूप में विभाजन नहीं कर सकते क्योंकि कहानी लेखन में ऐसी किसी प्रवृत्ति का व्यापक रूप में चित्रण नहीं हुआ है। एक ही समय में कई तरह की प्रवृत्तियों से प्रभावित कहानियां लिखी गई हैं। कथ्य और शिल्प की दृष्टि से जो बदलाव राजस्थानी कहानी में आना चाहिए उसकी झलक तो सन् 1970 के बाद के कुछेक कहानीकारों में दिखाई देती है अन्यथा अब भी राजस्थानी में घटना प्रधान, आदर्शवादी और परम्परागत शिल्प की कहानियां ही लिखी जा रही हैं।

मुरलीधर व्यास और उनके परवर्ती कहानीकार की मूल दृष्टि सामाजिक चेतना से जुड़ी हुई है इसलिए समाज सुधार और आदर्शवादी भावना कहानियों में प्रधान है। मुरलीधर व्यास की कहानियां शहरी जीवन से जुड़ी हुई हैं लेकिन उनकी कहानियों में समाज सुधार और सामाजिक कुरीतियों पर तीखा व्यंग्य है यथा 'ब्याव', 'पलमै रो मोल' और 'नरमेध या समाज रो नीरो' कहानियां ली जा सकती हैं। इन कहानियों में चरित्र-चित्रण एवं वातावरण की तरफ ध्यान न देकर समस्याओं के समाधान को ही प्रधानता दी है।

नानूराम संस्कर्ता के 'ग्योही' (1957), 'दस दोख' (1966) और 'घर की रैल' (1970) नाम से कहानी संकलन प्रकाशित हुए हैं। इन सग्रहों की कहानियों में आंचलिक जीवन की परम्पराओं, लोक विश्वास, सुख-दुःख और सामाजिक कुरीतियों का चित्रण किया है। परम्परागत शिल्प वाली इन कहानियों में आदर्श, उपदेश, मनोरंजन और वर्णनात्मकता की प्रधानता दिखाई देती है।

नृसिंह राजपुरोहित का राजस्थानी कहानीकारों में विशिष्ट स्थान दिखाई देता है। ग्रामीण परिवेश के बदलते सन्दर्भों एवं युगानुकूल चेतना को नृसिंह राजपुरोहित ने अपनी कहानियों में गहरी संवेदना के साथ अभिव्यक्त किया है। राजपुरोहित के प्रकाशित कथा-संग्रहों में 'रातवासो' (1961), 'अमर चूनड़ी' (1969), 'मऊ चाली मालवै' (1973), 'परभातियो तारो' आदि प्रमुख हैं। आजादी के पश्चात् बदलते सामाजिक मूल्यों, भ्रष्ट राजनीतिक स्थितियों, रिश्वतखोरी, भ्रष्टाचार, अकाल की त्रासद स्थिति और समाज की कुरीतियों को विषय बनाकर नृसिंह राजपुरोहित ने कहानियां लिखी हैं। नृसिंह राजपुरोहित की कहानियों में आज की विसंगतियों और निम्नवर्गीय जीवन की चेतना को ईमानदारी से प्रकट किया है। उनकी सब कहानियां यथार्थवादी हों, ऐसा तो नहीं कहा जा सकता लेकिन फिर भी 'रातवासो', 'उतर भीखा म्हारी बारी', 'गिरजड़ा', 'भाग्य विधाता', 'कुवै भांग पड़ी' आदि कहानियां यथार्थवादी एवं श्रेष्ठ मानी जा सकती हैं। नृसिंह राजपुरोहित की कहानियों में शिल्पगत नवीनता भी दिखाई देती है।

ग्रामीण परिवेश को अनुभूति के धरातल पर प्रकट करने वाले कथाकार हैं बैजनाथ पंवार। पंवार के दो कहानी संग्रह 'लाडेसर' (1970) और 'नैणा सूट्यो

नीर' प्रकाशित हुए हैं। पंवार की कहानियों में आदर्शोन्मुखी यथार्थवादी दृष्टि दिखाई देती है। 'लाडेसर', 'मरी', 'इनामी भाभी', 'जापो', 'नैणा लूट्यो नीर' आदि पंवार की चर्चित कहानियां है।

आदर्शवादी चेतना से प्रेरित श्रीलाल नथमल जोशी की कहानियां शहरी जीवन की मार्मिकता और उसकी समस्याओं को अपने ढंग से चित्रित करने वाली है। 'भाडेती' में कुंवारे व्यक्ति के लिए मकान की समस्या, 'मोलायोड़ी लाड़ी' में अनमेल विवाह की समस्या और 'परण्योड़ी कंवारी' में पति-पत्नी के सम्बन्धों की मनोवैज्ञानिक गुत्थी को प्रस्तुत किया गया है।

डॉ. मनोहर शर्मा की कहानियां सामाजिक समस्याओं को उजागर करने वाली आदर्शोन्मुखी यथार्थवादी कहानियां हैं। 'कन्यादान' (1971) नाम से आपका कहानी संग्रह प्रकाशित हुआ जिसमें सेठ साहूकारों की उदारता, साम्प्रदायिक सद्भाव और निर्धन जीवन की वेदना का चित्रण किया गया है। 'कन्यादान', 'फतियै रो ब्याव', 'खांजी' आदि रोचक कहानियां हैं।

नृसिंह राजपुरोहित के बाद कहानी क्षेत्र में अपनी अलग पहचान बनाने वाले अन्नाराम सुदामा हैं। सुदामा आस्थावादी रचनकार हैं और युग यथार्थ के प्रति उनकी अपनी दृष्टि है। 'आंधै नै आख्यां' (1971) और 'गलत इलाज' नाम से इनके दो कथा संग्रह प्रकाशित हुए हैं। सुदामा की कहानिया ग्रामीण परिवेश की भीतरी तहों को उजागर करने में समर्थ हैं। उनके पात्र संघर्षशील और परिस्थितियों से जूझते हुए नजर आते हैं फिर भी बोध और चिन्तन के धरातल पर उनकी अपनी सीमा है। कई स्थलो पर काव्यात्मकता और वैचारिक बोध के कारण शिल्पगत प्रभावहीनता भी आ गई है। 'दुर्लं डूंगर : फलं चट्टान', 'सुलतान नेकी रो सम्राट' 'लागीपगां', 'आन्धै नै आंख्या' इत्यादि सुदामा की प्रमुख कहानियां हैं।

करणीदान बारहठ ने ग्रामीण परिवेश के बदलते स्वरूप को अपनी कहानियों में चित्रित किया है। 'आदमी रो सींग' इनका प्रकाशित कहानी संग्रह है जिसमें पारिवारिक एवं सामाजिक समस्याओं को उठाया गया है। टूटती सामन्ती व्यवस्था, गवई जीवन पर राजनीति का बढ़ता प्रभाव और शिक्षा के कारण आने वाले परिवर्तन को करणीदान ने अपनी कहानियों का मुख्य विषय बनाया है। 'दोजख', 'चिमनी रो च्यानणो', 'मौत री गोठ' आदि उनकी प्रतिनिधि कहानियां हैं।

दामोदर प्रसाद शर्मा की कहानियों की संवेदना ग्रामीण एवं शहरी जीवन से जुड़ी हुई है। मानव मन की भीतरी प्रवृत्तियों के सूक्ष्म संघर्ष को चित्रित करने में दामोदर प्रसाद समर्थ रचनाकार है। 'प्रेतात्मा री प्रीत' नाम से आपका एक कहानी संग्रह प्रकाशित हुआ है। 'चितराम', 'प्रेतात्मा री प्रीत', 'हमजोली' आदि आपकी श्रेष्ठ कहानिया हैं।

मूलचन्द प्राणेश की कहानियों में यथार्थ परिवेश की झलक दिखाई देती है। प्राणेश ने मध्यवर्गीय परिवारों की आर्थिक तंगी, विवशता और अन्तर्द्वन्द्वों को चित्रित

किया है। 'उकलता आंतराः सीला सांस' (1973) और 'चश्मदीद गवाह' प्राणेश के प्रकाशित संग्रह हैं।

विजयदान देथा मुख्यत- लोक कथाकार हैं लेकिन 'अलेखू हिटलर' कहानी संग्रह मे इनकी मौलिक कहानियां हैं। देथा ने ग्राम्य चेतना के बदलते रूप और यथार्थ को प्रगतिशील दृष्टि से यथार्थ के ठोस धरातल पर प्रस्तुत किया है। मौलिक कहानियों का शिल्प लोक कथा शैली से प्रभावित है।

आजादी के पश्चात् आर्थिक दबावों के कारण संयुक्त परिवार प्रथा का विघटन ठेठ ग्रामांचल तक दिखाई देता है। इस कारण परिवार के आपसी रिश्तों एवं पति-पत्नी के सम्बन्धों मे भी नयी प्रकार की जटिलताएं दिखाई देती हैं। राजस्थानी के कुछ कहानीकारों ने इस संवेदना को भी अपने स्तर पर पकड़ने की कोशिश की है। यादवेन्द्र शर्मा चन्द्र, रामनिवास शर्मा, रामेश्वर दयाल श्रीमाली आदि ने ऐसी कहानियां लिखी हैं। आपसी सम्बन्धों का बदलाव रामनिवास शर्मा की 'सुहागण-भागण' और यादवेन्द्र शर्मा चन्द्र की 'बाप और बेटो' कहानियों में दिखाई देता है। औद्योगीकरण और मशीनीकरण ने किस प्रकार आज के व्यक्ति को जड या मात्र यंत्र बना दिया है, इसका चित्रण रामनिवास शर्मा की 'लैम्पपोस्ट' और 'आतम बोध' तथा रामेश्वरदयाल श्रीमाली की 'सलवटा' कहानियो में दिखाई देता है। श्रीमाली की कहानियां दलित वर्ग की पीड़ा, विवशता और दीनता को प्रकट करने वाली हैं। 'खाजरू', 'जसोदा' आदि श्रीमाली की चर्चित कहानियां हैं। 'सलवटां' नाम से उनका कहानी संग्रह भी छपा है।

अकाल जैसी प्राकृतिक आपदा ने राजस्थान के आर्थिक सामाजिक और सांस्कृतिक जीवन को काफी प्रभावित किया है। अकाल की चपेट में आने वाले गावों का खाली होना, पशु धन का मरना और रोजगार की तलाश में भटकते निम्न वर्ग की पीड़ा का चित्रण भी कई कहानियों मे किया गया है। मुरलीधर व्यास, (मेह मामो), नृसिंह राजपुरोहित (गांव री हथाई, 'सिनगारी'), बैजनाथ पवार (धापी, भूवा), रघुनाथसिंह (अकाल ऊपर लो काल) आदि ने अकाल पर अच्छी कहानियां लिखी हैं।

आदर्शवादी, आदर्शोन्मुखी यथार्थवादी और अन्त में यथार्थ की ओर उन्मुख होने वाली कहानियों मे सामाजिक समस्याओं की प्रधानता रही है। स्त्री-पुरुष और पारिवारिक जीवन की अनसुलझी स्थितियो को मनोवैज्ञानिक रूप भी कई कहानियो में दिखाई देता है। इस दृष्टि से नृसिंह राजपुरोहित, (प्रोब्लम चाइल्ड, निबली नाड), रामेश्वर दयाल श्रीमाली, रामनिवास शर्मा आदि हैं।

ऐतिहासिक कथानको को लोक कथा शैली मे प्रस्तुत करने वाले कहानीकारों मे लक्ष्मीकुमारी चूंडावत 'मांझल रातें', 'मूमल', 'गिर ऊंचा, ऊंचा गढ़ा', 'कै रे चकवा बात' आदि कहानी संग्रह, सौभाग्यसिंह शेखावत, व्रजमोहन जावलिया आदि

है। इसी तरह पौराणिक और धार्मिक प्रसंगों को आधार बनाकर भी कहानियाँ लिखी गई हैं।

आजादी के बाद सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक स्तर पर जो परिवर्तन आया, उसकी सही अभिव्यक्ति राजस्थानी कहानियों में सन् 1970 के बाद दिखाई देती है लेकिन जिस तरह राजस्थानी नयी कविता ने युगबोध के अनुकूल संवेदना ग्रहण की, उसकी तुलना में कहानी आज भी पिछड़ी हुई है। राजस्थानी में आज भी परम्परागत शिल्प विधान को लेकर कहानियाँ लिखी जा रही हैं तो दूसरी तरफ कुछ कहानीकारों ने कथा चेतना के इस परम्परित रूप को छोड़ कर यथार्थवादी कहानियाँ लिखी हैं। ऐसे कहानीकारों में सांवर दइया, रामस्वरूप परेश, मनोहरसिंह राठौड़, यादवेन्द्र शर्मा चन्द्र, बी. एल माली 'अशांत', भंवरलाल सुथार, चन्द्र प्रकाश देवल, सवाई सिंह शेखावत, मालचन्द तिवाड़ी, हनुमान पारीक, नन्द भारद्वाज, हरमन चौहान, मोहन आलोक, प्रेमजी 'प्रेम', जनक राज पारीक, अमोलक चन्द जांगिड़, श्री गोपाल जैन आदि हैं।

नयी पीढ़ी के कहानीकारों में सांवर दइया ने पारिवारिक यथार्थ को संवेदनात्मक अनुभूतियों के साथ प्रकट किया है। उनकी कहानियों में जीवन की विसंगतियों, खोखलेपन और अध्यापकीय जीवन की कुंठाओं पर तीखा व्यंग्य है। 'असवाड़ै पसवाड़ै', 'धरती कद ताई घूमैली' और 'एक दुनिया म्हारी' सांवर दइया के तीन प्रकाशित कहानी संग्रह हैं। दइया की कहानियों के शिल्प में नवीनता और नाटकीयता है। 'हालत' दइया की नाटकीय शैली में लिखी श्रेष्ठ कहानी है अन्य कहानियों में 'गली बणतो घर', 'सुकीड़जतो आंगणो', 'जुड़्या कट्या' 'छोजू' बसन्त आदि यथार्थवादी कहानियाँ हैं।

रामस्वरूप परेश ने अपनी कहानियों में मध्यवर्गीय जीवन की गम्भीर समस्याओं को ठोस धरातल पर प्रस्तुत किया है। इनकी कहानियाँ मानवीय स्थितियों के नये सन्दर्भ उजागर करने वाली हैं। 'उडीक', 'आंधी रो अेनाण' आदि कहानियाँ महत्त्वपूर्ण हैं।

मनोहर सिंह राठौड़ ने अपने आसपास की जिन्दगी के जीवन्त पात्रों की तलाश कर मानवीय संवेदना से भरपूर कहानियां लिखी हैं। 'रोशनी रा जीव' (1983) इनका प्रकाशित कहानी संग्रह है। इस संग्रह की 'बलद', 'रोशनी रा जीव' और 'बिणजारी' श्रेष्ठ कहानियाँ हैं।

यादवेन्द्र शर्मा चन्द्र ने समकालीन जीवन की असंगतियों को व्यंग्यात्मक रूप में अपनी कहानियों में प्रकट किया है। बी. एल. माली अशांत की कहानियाँ समय सत्य को अपने ढंग से प्रकट करती हैं। 'काजल री हत्या', 'चिगल्योड़ा हाथ', 'भिखारी' आदि चर्चित कहानियाँ हैं। 'किली किली कटको' अशांत का प्रकाशित कहानी संग्रह है। मालचन्द तिवाड़ी की कहानियों में कथ्य और शिल्प की काफी

नवीनता है। 'नाजायज', 'याद' आदि उल्लेखनीय कहानियां हैं। भंवरलाल भ्रमर के 'तगादो' और 'अमूजो कद ताई' दो कहानी संग्रह हैं। भ्रमर की कहानिया आम आदमी की पीड़ा, अभाव और घुटन को व्यक्त करने वाली है।

इन कहानीकारो के अतिरिक्त जिन कहानियो ने यथार्थ चेतना के नये सन्दर्भों को अपने परिवेश में अन्वेषित किया है इनमें 'घोड़ा रो डागदर' (चन्द्र प्रकाश देवल्), 'ठस्योड़ो मून' और 'अकाल मौत' (नन्द भारद्वाज), ताम्र पतर (कृष्ण कल्पित), भीत (हनुमान पारीक), बुद्धिजीवी (मोहन आलोक), अमूरो (अमोलक चन्द जागिड), कूंपल (सवाई सिंह शेखावत), खजानो (प्रेमजी प्रेम) आदि हैं। आज काफी कहानिया लिखी जा रही हैं। अन्य कहानीकारों में मदन केवलिया, माधव नागदा, मीठेश निर्मोही, चेतन स्वामी, शिवराज छंगाणी, दीनदयाल ओझा, मुरलीधर शर्मा विमल, शान्ता भानावत आदि हैं।

राजस्थानी में लघुकथा लिखने वालों में डॉ. मनोहर शर्मा, डॉ. उदयवीर शर्मा आदि प्रमुख है।

इस तरह राजस्थानी कहानी अब धीरे-धीरे यथार्थ की ओर अग्रसर हो रही है तथा उसमें कथ्य और शिल्प के स्तर पर काफी परिवर्तन हो रहा है। कहानी की भाषा चेतना भी रूढ रूप को छोड़ कर आज की जीती-जागती स्थितियों से जुड़ कर सामान्य भाषा का रूप ले रही है।

नाटक—राजस्थानी नाटक का प्रारम्भ शिवचन्द्र भरतिया द्वारा लिखित 'केसर विलास' (1900) में माना जाता है और यह राजस्थानी का प्रथम नाटक है। इसमें तत्कालीन मारवाड़ी समाज को ध्यान में रखकर सुधारवादी दृष्टिकोण को अपनाया है। इसके बाद भरतिया के 'फाटका जंजाल' और 'बुढापा की सगाई' नाटक प्रकाशित हुए जिनमें सामाजिक कुरीतियों का चित्रण किया गया है। समाज सुधार की भावना से लिखे जाने वाले अन्य नाटकों में भगवती प्रसाद दारुका का 'बाल विवाह नाटक', 'वृद्ध विवाह नाटक', 'सीठणा सुधार नाटक', गुलाब चन्द नागोरी का 'मारवाड़ी मौसर' और 'सगाई जंजाल', बालकृष्ण लाहोरी का 'कन्या विक्री' एवं नारायण दास अग्रवाल का 'बाल ब्याव को फार्स' उल्लेखनीय हैं। इन सभी नाटकों में सामाजिक कुप्रथा, आदर्शवादी समाधान और उपदेशमूलक प्रवृत्ति दिखाई देती है। अभिनेयता की दृष्टि से इनमें भरतिया के 'केसर विलास' को जैसी सफलता मिली वैसी अन्य सामाजिक नाटकों को नहीं।

सामाजिक नाटकों की परम्परा में मदनमोहन सिद्ध का 'जयपुर की ज्योणार' (1928) काफी लोकप्रिय नाटक रहा है जो दो खण्डों में प्रकाशित हुआ।

इसके बाद 1929 मे कलकत्ता से ठाकुरदत्त जी दाधीच का 'माहेश्वरी पंचायत रो बायस्कोप' नाटक प्रकाशित हुआ। इसकी भाषा जैसलमेरी है। इसके बाद राजस्थानी नाटकों के क्षेत्र मे फिर एक लम्बा अन्तराल दिखाई देता है।

गीतकार भरत व्यास ने दो नाटक 'रंगीलो मारवाड' (1947) और 'ढोला मरवण' (1949) लिखे। रंगमंच को ध्यान में रख कर लिखे इन नाटकों ने काफी लोकप्रियता प्राप्त की तथा बाद में इन पर फिल्म भी बनी। इन नाटकों पर भी पारसी थियेटर का प्रभाव दिखाई देता है।

स्व सूर्यकरण पारीक का ऐतिहासिक नाटक 'मीरां'[1] अब प्रकाशित हुआ है। इस नाटक में पारीक जी ने मीरा के चरित्र को शोधपूर्ण सामग्री के आधार पर प्रस्तुत किया है। इसका रचना काल सन् 1930 से 1936 के बीच होना चाहिए।

भरत व्यास के बाद समाज सुधारवादी भावना में जमना प्रसाद पचोरिया का 'नई बींनणी' (196) नाटक प्रकाशित हुआ। इसमें नारी के पिछड़ेपन एवं अनमेल विवाह की समस्या को प्रकट किया गया है।

आशाचन्द भण्डारी का ऐतिहासिक नाटक 'पन्नाधाय' (196) में प्रकाशित हुआ। इसमें पन्नाधाय जैसे अमर चरित्र को बडी कुशलता के साथ प्रस्तुत किया गया है। राजस्थानी में इससे पूर्व ऐतिहासिक नाटकों में श्री नारायण अग्रवाल का 'महाराणा प्रताप' पहला नाटक कहा जावेगा। महाराणा प्रताप के चरित्र को आधार बनाकर गिरधारीलाल शास्त्री ने भी 'प्रणवीर प्रताप' नाम से मेवाड़ी भाषा में नाटक लिखा।

सत्यनारायण अमन ने 'गुदाड़ की जायेडी' नाटक लिखा जो 'हरावल' मासिक में धारावाहिक रूप में छपा। यह भी सामाजिक नाटक है और रंगमंच को ध्यान में रखकर लिखा गया है।

कथाकार यादवेन्द्र शर्मा चन्द्र ने 'तास रो घर' (1973) और बद्रीप्रसाद पंचोली ने 'पानी पैली पाल' (1973) नाटक लिखे। 'तास रो घर' आधुनिक जीवन की संवेदना को सफलता के साथ प्रस्तुत करने वाला नाटक है। इस नाटक से राजस्थानी नाटक में युगबोध का रचनात्मक स्वरूप नाटकीय प्रभाव के साथ प्रकट होता है। 'पानी पैली पाल' हाडोती बोली में लिखा ऐतिहासिक नाटक है जिसमें नारी शिक्षा, गरीबी, प्रजातन्त्र और पंचायती राज के महत्व आदि स्थितियों पर प्रकाश डाला गया है।

नाटक के साथ रंगमंच जुड़ा हुआ है और रंगमंच का स्वरूप भी युगानुरूप बदलता रहा है। पारसी कम्पनियों का अपना रंगमंच था और आधुनिक नाटकों का आधुनिक रंगमंच। राजस्थान में आधुनिक रंगमंच का अभाव है फलतः ऐसे नाटकों को विशेष प्रोत्साहन नहीं मिला है फिर भी अर्जुनराम गुरामा का 'बापो बधाई', अर्जुनदेव चारण का 'धाड़ रा दोय नाटक' और 'बोल म्हारी मछली कित्तो पाणी',

1. मरुधर . जून, 1982, पृ. 56.

पी. एल. माली 'प्रशांत' का 'बोलता भारत', लक्ष्मीनारायण रंगा का 'बहुरूपियो', रामकुमार महेन्द्र का 'म्हारै तो गिरधर गोपाल', और 'कहत कबीर सुणो भाई साधो' तथा गोरधनसिंह शेखावत का 'तीसमारखां' (1988) और 'बन्नीराम' (1989) उल्लेखनीय नाटक हैं। अर्जुन चारण के नाटक रंगमंचीय दृष्टि से प्रभावोत्पादक हैं तथा उनका जोधपुर व अन्य स्थानों पर मंचन भी हुआ है। 'प्रशान्त' का नाटक आज की राजनीतिक स्थिति पर तीखा प्रहार करने वाला है तो गोरधनसिंह शेखावत का 'तीसमारखां' राजस्थानी का पहला हास्य नाटक और 'बन्नीराम' लोक नाट्य शैली में लिखा पहला नाटक है।

इस तरह हम देखते हैं कि राजस्थानी नाटक गहरी सम्भावनाओं को लिए प्रकट हो रहा है लेकिन उसके विकास की गति मंद है जिसका एकमात्र कारण मंच का अभाव है।

एकांकी—नाटक की तुलना में राजस्थानी एकांकी की विकास यात्रा अधिक सन्तोषजनक दिखाई देती है। राजस्थानी में एकांकी लेखन की शुरुआत सन् 1930 के आसपास होती है। सन् 1930 में शोभाचन्द जम्मड का 'वृद्ध विवाह विदूषण' एकांकी सामने आया जिसे राजस्थानी का प्रथम एकांकी माना जा सकता है। राजस्थानी नाटक और रंगमंच में शोभाचन्द जम्मड का महत्त्वपूर्ण योगदान है। इसके बाद 1931 में श्रीनाथ मोदी का 'गांमा जाट' एकांकी प्रकाशित हुआ। इस एकांकी की रचना शैली परम्परित है। 1933 में सूर्यकरण पारीक का 'बोलावण' एकांकी छपा। यह एकांकी आधुनिक एकांकी की शैली में लिखा [illegible]

'बोलावण' के बाद एकांकी क्षेत्र में भी लम्बा [illegible] 1954 में गोविन्द लाल माथुर का सात एकांकियों का [illegible] होता है। माथुर के सभी एकांकी सामाजिक [illegible] गए हैं। इस संकलन का 'लालची मा-बाप' [illegible] माथुर का दूसरा एकांकी संग्रह 'पंचायत राज' [illegible]

एकांकी विधा के लेखन को '[illegible]' आदि पत्रिकाओं से गहरा प्रोत्साहन [illegible] एकांकी प्रकाशित होते रहे। [illegible] वालों में डॉ. मनोहर शर्मा, [illegible] सांकृत्य, आज्ञाचन्द [illegible] जोशी, बैजनाथ पंवार, [illegible] त्रिलोक गोयल, [illegible]

[illegible] राजस्थानी [illegible] उसमें विविधता है। [illegible] लिखे गये हैं। [illegible]

दिखाई देती है। सामाजिक समस्याओं को लेकर लिखे गये एकांकियों में गोविन्द माथुर, निरंजननाथ आचार्य, नारायणदत्त श्रीमाली, दामोदर प्रसाद शर्मा, नागराज शर्मा आदि के एकांकी लिये जा सकते हैं। गोविन्द माथुर ने मूल रूप से समस्या-मूलक एकांकी लिखे हैं। उनके 'सतरंगिणी' नाम से दो खण्डों में एकांकी प्रकाशित हुए हैं। इनमें 'लालची मां-बाप', 'डाक्टर रो ब्याव', 'बाल विधवा' आदि मुख्य एकांकी हैं जिनमें सामाजिक कुरीतियों का चित्रांकन किया गया है। इसी तरह नारायणदत्त श्रीमाली का 'छियां तावड़ो', दामोदर प्रसाद का 'तोप रो लाइसेन्स', सुरेन्द्र अचल का 'रगत एक मिनख रो' पारिवारिक जीवन, भ्रष्ट शासन व्यवस्था और साम्प्रदायिक उन्माद को प्रकट करने वाले हैं।

ऐतिहासिक एकांकियों में लक्ष्मीकुमारी चूण्डावत, डॉ. मनोहर शर्मा, आशाचन्द भण्डारी, रामदत्त सांकृत्य आदि के एकांकी राजस्थान के गौरवमय अतीत, शौर्य और वीर परम्पराओं को वाणी प्रदान करने वाले दिखाई देते हैं। लक्ष्मीकुमारी चूण्डावत के 'सामधरमा माजी' में राजपूत ललना का अपूर्व धैर्य, आशाचन्द भण्डारी के 'देस रै वास्तै' एकांकी में मां की कठोरता, रामदत्त सांकृत्य के 'देस रो हेलो' में प्रताप का स्वातन्त्र्य प्रेम, डॉ. मनोहर शर्मा के 'कवि रो कलरु', 'उमादे' 'राजदण्ड' आदि एकांकियों में सामन्ती समाज की दुर्बलताओं का चित्रण किया गया है।

राजस्थानी के हास्य व्यंग्य एकांकीकारों में मालचन्द कोला, गोविन्द माथुर, नागराज शर्मा आदि प्रमुख हैं। मालचन्द कोला के 'कुमलो फौज में' (1967) और 'राजस्थानी हास्य एकांकी' (1967) दो संग्रह प्रकाशित हुए हैं। 'राजस्थानी हास्य एकांकी' में तीन हास्य एकांकी श्रीमन्तकुमार व्यास ('गादड़ी री पूंछ', 'पोपाबाई रो सालो' और 'मामी मूं मसखरी') के भी हैं। गोविन्द माथुर के हास्य व्यंग्य एकांकियों में 'एकता री मिसाल', 'दायजो मू गो पड़गो' और 'रमक बणगा भवमक' प्रमुख हैं। नागराज शर्मा के हास्य व्यंग्य एकांकियों के दो संकलन 'इबतो चेतो' और 'राम मिलाई जोड़ी' प्रकाशित हुए हैं। समसामयिक समस्याओं पर हास्य व्यंग्य शैली में लिखे ये एकांकी रंगमंच की दृष्टि से काफी सफल हैं। अन्य व्यंग्य एकांकियों में 'आपणो खास आदमी' (बैजनाथ पवार) सम्पादक की मौत (रावत सारस्वत), 'तोप रो लाइसेन्स' (दामोदर प्रसाद शर्मा) इत्यादि उल्लेखनीय है।

इस तरह राजस्थानी में एकांकी विधा धीरे-धीरे अपना स्वरूप तो बना रही है लेकिन अन्य विधाओं की तुलना में कुछ पिछड़ी हुई है। आज रंगमंच की आवश्यकता है जिससे इस तरह के लेखन को संचित किया जा सके।

निबन्ध—राजस्थानी में निबन्ध विधा का भी अभी तक पूर्ण विकास नहीं हो पाया है। निबन्ध का आरम्भिक रूप शिवचन्द्र भरतिया की राजस्थानी कृतियों (कनक सुन्दर, फाटका जंजाल आदि) की भूमिका में देखा जा सकता है। इसके बाद 'मारवाड़ी हितकारक', 'पंचराज' आदि पत्रों में भावात्मक तथा हास्य व्यंग्य शैली के

निबन्ध प्रकाशित होने लगे। व्रजलाल बियाणी के 'मोगरा कली', 'गुलाब कली' 'बड़ी फजर को दीवो' आदि भावात्मक शैली के श्रेष्ठ निबन्ध माने जा सकते हैं। बाद में जब 'जागती जोत', 'मारवाड़ी' राजस्थानी आदि पत्रिकाएं प्रकाशित हुईं तो उनमें भी यदाकदा कुछ निबन्ध छपे। निबन्धों का नियमित लेखन 'मरुवाणी' और 'ओळमो' जैसी साहित्यिक पत्रिकाओं के प्रकाशन से ही शुरू होता है। इन पत्रिकाओं के माध्यम से राजस्थानी में वर्णनात्मक, विचारात्मक, विवेचनात्मक और हास्य-व्यंग्य शैली के निबन्ध लिखे गये। इन निबन्धों में कहीं ऐतिहासिक पृष्ठभूमि है तो कहीं सांस्कृतिक धरातल की उदात्तता; कहीं वैयक्तिक अनुभूतियों का गहरा स्पर्श है तो कहीं विचार और दर्शन का ठोस रूप और कहीं साहित्यिक समस्याओं की विवेचना है तो कहीं व्यंग्य विनोद की अपनी छटा।

राजस्थानी के निबन्धकारों में लक्ष्मीकुमारी चूंडावत, डॉ. मनोहर शर्मा, रावत सारस्वत, कृष्णगोपाल शर्मा, सुमेरसिंह शेखावत, जहूरखां मेहर, शक्तिदान कविया, बी. एल. माली 'अशांत', डॉ. किरण नाहटा, श्रद्धाराम सुदामा आदि उल्लेखनीय हैं। चूण्डावत के 'मेवाड़ी फागण' और 'मेवाड़ी दिवाली' निबन्ध राजस्थान के सांस्कृतिक गौरव को अभिव्यक्त करने वाले हैं। डॉ. मनोहर शर्मा ने वर्णनात्मक और विवेचनात्मक निबन्ध लिखे हैं। 'रोहिड़ै रा फूल' (1973), डॉ. शर्मा के व्यंग्यात्मक निबन्धों का संग्रह है। 'राजस्थानी साहित्य की झांकी' आपका विस्तृत विवेचनात्मक निबन्ध है। रावत सारस्वत का 'पोथी बातां' और कृष्णगोपाल शर्मा 'अंनक', 'चोलो', 'धारजू पुराण' श्रेष्ठ निबन्ध हैं। कृष्णगोपाल शर्मा के निबन्धों में वैयक्तिकता का गहरा स्पर्श है।

सुमेरसिंह शेखावत के निबन्ध संग्रह 'माणक मोती' (1988) में राजस्थानी भाषा, साहित्य और संस्कृति के विविध पक्षों पर मौलिक चिन्तन दिखाई देता है। साहित्येतर विषयों पर सुमेरसिंह शेखावत ने ललित निबन्ध भी लिखे हैं। उनकी भाषा का अपना मुहावरा है तो कथन की अपनी शैली।

जहूर खां मेहर के 'राजस्थानी संस्कृति रा चितराम' और 'धरमजला धर कोसां' नाम से दो निबन्ध संग्रह प्रकाशित हुए हैं। ऐतिहासिक परिवेश, गहरी सांस्कृतिक दृष्टि और भाषागत लालित्य के कारण जहूर खां मेहर के निबन्धों की अलग पहचान है। शक्तिदान कविया का 'संस्कृति री सौरभ' नाम से निबन्ध संकलन छपा है जिसमें सांस्कृतिक चेतना की गहरी संवेदनाओं को उद्घाटित किया है। डॉ किरण नाहटा के 'अल लुआ बाजो कठी' निबन्ध संग्रह में विवेचनात्मक शैली के दर्शन होते हैं। बी. एल. माली 'अशांत' के दो निबन्ध संग्रह 'माटी मूं मजाक' और 'तारां छाई रात' प्रकाशित हुए हैं इनमें चिन्तन पक्ष की प्रधानता दिखाई देती है। बुलाकी शर्मा के 'कवि, कविता और घर आली' संग्रह में व्यंग्यात्मक शैली में लिखे गये निबन्ध हैं।

इन निबन्ध सग्रहों के अतिरिक्त पत्र-पत्रिकाओं में जिनके निबन्ध छपते रहते हैं उनमे श्रीलाल नथमल जोशी, दीनदयाल ओझा, मूलचन्द प्राणेश, सूर्यशंकर पारीक, महेन्द्र भानावत, त्रिलोक गोयल आदि हैं। निबन्ध विधा में आज भी अपेक्षित प्रौढ़ता का अभाव है।

समालोचना—राजस्थानी पत्र-पत्रिकाओं में समय-समय पर समीक्षात्मक लेख प्रकाशित होते रहे हैं। राजस्थानी कृतियों के आधार पर अभी तक कोई सर्वांग समीक्षात्मक ग्रंथ नही छपा है और न किसी ने समीक्षक जैसे गम्भीर दायित्व के आधार पर रचनाओं के गुण-दोषों को ध्यान में रखकर रचनाकारों का मार्ग-प्रशस्त ही किया है। इस दृष्टि से समालोचना का अभाव अब तक बना हुआ है। आधुनिक रचनात्मक साहित्य को लेकर 'हरावल', 'दीठ', 'जागती जोत', 'मरुवाणी', 'ओलमो' आदि पत्रिकाओ मे कुछ लेख एवं समीक्षात्मक टिप्पणी छपी है। 'मरुवाणी' और 'जागती जोत' पत्रिका के 'समीक्षा अंक' भी प्रकाशित हुए जिनमें प्रकाशित पुस्तको की समीक्षा एव साहित्य की विधाओ पर कुछ लेख प्रकाशित हुए हैं।

राजस्थानी मे नये रचनाकारों ने समीक्षा की शुरुआत अवश्य की है भले ही इनमें तटस्थता का अभाव हो। डॉ. तेजसिंह जोधा, नन्द भारद्वाज, डॉ. गोरधनसिंह शेखावत, डॉ. रामबक्स, डॉ. किरण नाहटा, डॉ. पुरुषोत्तम आसोपा, डॉ. मदन केवलिया, ओंकार पारीक आदि कुछ नये समीक्षक हैं। डॉ. तेजसिंह जोधा की समालोचना मे मौलिक दृष्टि एवं विषय वस्तु को गहराई से समझने की सामर्थ्य दिखाई देती है। 'राजस्थानी अेक' (भूमिका), 'दीठ' और 'हेमाणी' ('परम्परा' का अक) अक के समीक्षात्मक लेख इसके प्रमाण है। नन्द भारद्वाज की समीक्षात्मक कृति 'दौर अर दायरो' मूल्यांकन की अपनी दृष्टि लेकर चलती है। इसी प्रकार 'सिरजण री परख' डॉ. पुरुषोत्तम आसोपा के समय-समय पर प्रकाशित समीक्षात्मक लेखों का सग्रह है।

गद्य साहित्य की अन्य विधाएँ :

राजस्थानी मे जीवनी रेखाचित्र, संस्मरण, यात्रावृत्त, इन्टर व्यू, गद्यकाव्य आदि साहित्य विधाओ में भी कुछ लिखा गया है लेकिन अन्य गद्य विधाओं की तुलना मे बहुत कम। इनका संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है—

जीवनी—राजस्थानी में जीवनी साहित्य आजादी के बाद लिखा गया है तथा 'मरुवाणी', 'ओलमो', 'हरावल' आदि पत्रिकाओ मे समय-समय पर सन्तों, महात्माओं, लोकप्रिय साहित्यकारों, कवियो आदि की जीवनी प्रकाशित होती रही हैं। श्रीलाल नथमल जोशी की गाधीजी की जीवनी 'आपणा बापूजी'(1969), डॉ. किरण नाहटा की 'शिवचन्द्र भरतिया' (1970), दीनदयाल ओझा की 'देस रा गौरव' (1972) 'भारत रा निर्माता' (1972), 'छोटी उमर : बड़ा काम' (1972), शान्ता भानावत की 'महावीर रा ओलखाण' आदि उल्लेखनीय रचनाएँ हैं।

रेखाचित्र—राजस्थानी मे रेखा चित्र लगभग 1946-47 के आसपास लिखे जाने लगे। भवरलाल नाहटा का 'लाभू बावो' प्रथम संस्मरणात्मक रेखाचित्र है। 1946 मे श्रीलाल नथमल जोशी का 'फरामल' रेखा चित्र प्रकाशित हुआ। इसके बाद धीरे-धीरे इस विधा मे पत्र-पत्रिकाओ मे रेखाचित्र छपने लगे। रेखाचित्र लिखने वालों में मुरलीधर व्यास, श्रीलाल नथमल जोशी, मोहनलाल पुरोहित, शिवराज छगाणी, नेमनारायण जोशी, सूर्यशंकर पारीक, ओंकार पारीक आदि प्रमुख है।

'जूना जीवता चित राम' (1960) में मुरलीधर व्यास और मोहनलाल पुरोहित ने समाज के उपेक्षित पात्रों को अपने रेखाचित्र का विषय बनाकर मानवीय संवेदना का परिचय दिया है। श्रीलाल नथमल जोशी के 'सबडका' (1960) मे अपने निकट सम्पर्क में आने वाले व्यक्तियो की मधुर स्मृति को प्रस्तुत किया है। इनमें कुछ हास्य-प्रधान रेखाचित्र भी हैं। भंवरलाल नाहटा की 'बानगी' (1965) शिवराज छंगाणी की 'उणियारा' (1970) ब्रजनारायण पुरोहित की 'अटारवां' (1970), 'वकील साहब' (1974) आदि कुछ रेखाचित्रों की उल्लेखनीय कृतियां है जिनमे सवेदनापूर्ण रेखाचित्र लिखे गये है। अन्य रेखाचित्र लिखने वालों में दाऊदयाल जोशी (मैंसो होय न मिनख री बोली बोलै), ओंकार पारीक ('हेमी', भागीरथजी) आदि हैं।

संस्मरण लिखने वालों में मुरलीधर व्यास, मोहनलाल पुरोहित, भंवरलाल नाहटा, श्रीलाल नथमल जोशी, ब्रजनारायण पुरोहित आदि है। अन्नाराम सुदामा की 'देस-दिसावर' (1975) कृति मे यात्रा के सस्मरण लिखे है।

यात्रावृत्त कम लिखे गये हैं फिर भी रामकुमार ओझा बुद्धिजीवी, (जात्रा अमरनाथ धाम री), कल्याणसिंह राजावत (तल्लीताल-मल्लीताल नैनीताल) आदि के यात्रा-वृत्तान्त रोचक हैं।

इन्टरव्यू—राजस्थानी में इस विधा का भी अच्छा विकास हुआ है तथा 'बिणजारो', 'माणक', 'परम्परा' (हेमाणी अक) आदि पत्रिकाओ मे विविध क्षेत्रो म काम करने वाले लोगो के व्यक्तित्व एवं कृतित्व की झांकी इस विधा के माध्यम मे प्राप्त हुई है। डॉ तेजसिंह जोधा ने 'माणक' मे 'आमी-सामी स्तम्भ' के अन्तर्गत अलग-अलग क्षेत्रो के लोगों के इन्टरव्यू लिये हैं (शिवचरण माथुर, अन्नाराम सुदामा, गजसिंह आदि)। डॉ. गोरधनसिंह शेखावत ने 'बिणजारो' पत्रिका में डॉ. मनोहर शर्मा, विमलेश, दुलिया राणा, झाबरमल शर्मा आदि के इन्टर व्यू लिये हैं। 'परम्परा' के 'हेमाणी' अंक मे आधुनिक कवियो के लिए हुए इन्टरव्यू उनके व्यक्तित्व, रचना-प्रक्रिया आदि को स्पष्ट करने वाले हैं। ऐसे इन्टरव्यू मे नारायणसिंह भाटी मे लिया गया डॉ. तेजसिंह जोधा का, सत्यप्रकाश जोशी और चन्द्रसिंह मे लिया गया नन्द भारद्वाज का और रेवतदान चारण से लिया गया मोहनदान चारण का इन्टरव्यू उल्लेखनीय है।

गद्य काव्य—गद्य काव्य का आरम्भ राजस्थानी मे 1946 में चन्द्रसिंह द्वारा 'राजस्थानी' पत्रिका में प्रकाशित 'सीप' से प्रारम्भ होता है। इसके बाद गद्य काव्य की प्रवृत्ति विकसित होती है जिसमें कन्हैयालाल सेठिया, मुरलीधर व्यास, वैजनाथ पवार, लक्ष्मीकुमारी चूण्डावत, डॉ. मनोहर शर्मा, गोविन्द अग्रवाल, माणक बंधु तिवारी आदि प्रमुख है। कन्हैयालाल सेठिया की 'गलगचिया' (1972), चन्द्रसिंह की 'बालसाद', गोविन्द अग्रवाल की 'नुक्तीदाणा' (1978) आदि उल्लेखनीय कृतिया हैं।

अनुवाद—राजस्थानी मे अन्य दूसरी भाषाओ के साहित्य से भी महत्त्वपूर्ण रचनाओ के अनुवाद बराबर होते रहे है। राजस्थानी मे संस्कृत, अंग्रेजी, बगला, उर्दू एव विदेशी भाषाओं की प्रतिष्ठित कृतियो एव रचनाओं के अनुवाद दिखाई देते हैं। अनुवाद की दृष्टि से चन्द्रसिंह('रघुवंश', 'गाथा सप्तशती', 'मेघदूत')डॉ. नारायणसिंह भाटी (मेघदूत), डॉ मनोहर शर्मा ('रवीन्द्र वाणी' 'मेघदूत 'उमर खय्याम'), मनोहर प्रभाकर ('उमर खयाम', 'भरथरी सतक'), विश्वनाथ शर्मा विमलेश (भगवद्गीता), किशोर कल्पनाकांत ('रितु सहार', 'नष्ट नीड़', 'शेक्सपीयर री बाता'), रामनाथ व्यास परिकर (लेनिन कुसुमाजली-रूसी भाषा से), रावत सारस्वत (जफरनामो: बंसरी गाथा सप्तशती, रिग्वेद की रिचवा), जोगीदान कविया (कुरान की आयतां), युसुफ झुन्झुनवी (गालिब राजस्थानी) आदि के अनुवाद उल्लेखनीय हैं। अन्य अनुवादको मे गिरधारीलाल शास्त्री, डॉ नृसिंह राजपुरोहित, गोविन्द माथुर, मांगीलाल चतुर्वेदी, आई. के शर्मा, कृष्णगोपाल कल्ला, भगवतीलाल शर्मा, सत्यप्रकाश जोशी देवदत्त नाग आदि हैं।

नयी पीढ़ी मे डॉ. तेजसिंह जोधा, नन्द भारद्वाज पारस अरोड़ा, डॉ गोरधनसिंह शेखावत, ओंकार पारीक, मनोहरसिंह राठौड ने विदेशी रचनाओं के अनुवाद किये हैं। इनमे डॉ. तेजसिंह जोधा के किये अनुवादो की संख्या सबसे अधिक है। उन्होने 'रसूल हमजातोव' की कविताओ के अनुवाद के अतिरिक्त फ्रेंच, जर्मन, रूसी, बंगला, पंजाबी मैथिली आदि रचनाओं के श्रेष्ठ अनुवाद किये हैं।

पत्र-पत्रिकाएं—रचनात्मक साहित्य को आगे बढाने मे पत्र-पत्रिकाओं का महत्त्वपूर्ण योगदान है। आजादी मे पूर्व कुछ ऐसी पत्रिकाएं थी जिनमे राजस्थानी की रचनाएं छपा करती थी। इन पत्रिकाओ में 'वैश्योपकारक' (कलकत्ता), 'महेश्वरी' (अलीगढ), 'पंचराज' (नासिक), 'हंस' (इलाहाबाद), विशाल भारत (कलकत्ता), 'मारवाडी' (अहमदनगर), 'मारवाड़ी भास्कर' (शोलापुर), 'आगीवाण' (ब्यावर), 'राजस्थानी' (कलकत्ता) आदि प्रमुख हैं।

राजस्थानी के रचनात्मक लेखन को प्रकाश मे लाने एवं रचनाकारो को प्रोत्साहन देने मे 'मरुवाणी' (जयपुर) और 'ओलमो' (रतनगढ) जैसी साहित्यिक पत्रिकाओ का ऐतिहासिक महत्व है। इसके बाद राजस्थानी मे 'जाणकारी' (जोधपुर), 'जलम भोम' (बीकानेर), 'हरावल' (जोधपुर), नैणसी (कलकत्ता), 'राजस्थली'

(डूंगरगढ़), 'जागती जोत' (बीकानेर), हेलो (बीकानेर), ओलखाण (जोधपुर), 'राजस्थानी ग्रेक' ग्रौर 'दीठ' (रतनगसर), 'कचनार' (ग्रंता), 'इमरलाट' (जयपुर), 'ग्रपरंच'(जोधपुर), 'वतलावरा'(पिलानी), बिरणजारो (पिलानी), गोरबंद (लक्ष्मरणगढ़), मरवरण (बीकानेर), परिणहारी (जयपुर), 'मारणक' (जोधपुर), आदि है । डॉ. तेजसिंह जोधा में सम्पादन-कुशलता ग्रौर मौलिक दृष्टि दिखाई देती है जिसके कारण उन्होंने 'राजस्थानी ग्रेक', 'दीठ' ग्रौर 'हथाई' जैसी बहुचर्चित साहित्यिक पत्रिकाग्रों को जन्म दिया तो 'मारणक' जैसी व्यावसायिक पत्रिका की शुरुग्रात भी की ।

'मरुवाणी' ग्रौर 'ग्रोलमों' के बाद 'हरावल' पत्रिका ने साहित्यिक रचनाग्रों को प्रकाश में लाने का सराहनीय कार्य किया । 'ग्रपरंच', 'राजस्थली' ग्रौर 'जागती जोत' पत्रिकाग्रो ने युवा पीढ़ी के रचनाकारों को खूब छापा है ।

बालोपयोगी रचनाग्रों के लिए 'झुंझरिणयो' (लक्ष्मरणगढ़) एक मात्र मासिक पत्र रहा है जिसमे डॉ. मनोहर शर्मा, बी. एल. माली, ग्रज्ञात, भानसिंह 'मरुधर', सवाईसिंह धमोरा ग्रादि की बालोपयोगी रचनाएं प्रकाशित होती रही है ।

राजस्थानी में साहित्यिक पत्रिकाएं निकलीं ग्रौर आर्थिक सकट के कारण बन्द हो गईं ग्रब 'मारणक', 'जागती जोत', 'बिरणजारो' ग्रादि कुछ नियमित पत्रिकाएं हैं ग्रत: राजस्थानी में पत्रिकाग्रो का ग्रभाव ही माना जायेगा ।

मूल्यांकन—राजस्थानी गद्य साहित्य की विविध विधाग्रों की उपलब्धि का मूल्यांकन करें तो ऐसा प्रतीत होता है कि कहानी को छोड़कर शेष विधाग्रो मे बहुत कम रचनाएं उपलब्ध होती है फिर उपन्यास, नाटक, एकाकी या ग्रन्य गद्य विधाग्रों में केवल कहानी ही ऐसी विधा दिखाई देती है जिसने समसामयिकता ग्रौर ग्राधुनिक संवेदना को ग्रहरण किया है । इतना ग्रवश्य है कि गद्य मे ग्रब लिखना प्रारम्भ हुग्रा है तथा धीरे-धीरे उसमें नवीन प्रवृत्तियों का समावेश होता जा रहा है ।

ग्राजादी के बाद की परिस्थितियों ने राजस्थानी के रचनाकार को झकझोरा है, फलत: उसने ग्राज की राजनीति, जड़ व्यवस्था ग्रादि पर गद्य में तीखा व्यंग्य किया है । उपन्यास, नाटक, एकाकी, रेखाचित्र, संस्मरण ग्रादि मे कथा ग्रौर शिल्प की विविधता का ग्रभाव है, फिर भी इस बात की प्रसन्नता है कि राजस्थानी का गद्य ग्रपना स्वरूप बनाने की दिशा मे ग्रग्रसर हो रहा है ।

□□□